

संस्कृत कवियोंकी अनोखी सूझ.

—: लेखक :-

पं० जनार्दन भट्ट एम० ए०

प्रकाशक:

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी,

१२६, हरिसनरोड,

कलकत्ता ।

—:—

मुद्रक—

महावीर प्रसाद पोद्दार

“वैशिक प्रेस”

६०, मिर्जापुर स्ट्रीट,

कलकत्ता ।

प्रकाशक—

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

१२६, हरिसनरोड,

कलकत्ता ।

निवेदन

— ७१५ —

इस सग्रहकी सँर करके मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। प्रायः सभी श्लोक अनोखे हैं और अनेक विषयोंके हैं। शृङ्गाररसकी उक्तिया अनोखी होनेपर भी उद्देगजनक नहीं। भाचार्य लिख देनेसे केवल हिन्दी जाननेवाले भी इससे आनन्दप्राप्ति कर सकेंगे। श्लोक फण्ट करने लायक हैं। लौगीकी रचि सम्प्रतकी ओर बढ़ रही है। इस दशामें, आशा है, सभी सर्वसाधारण जन इसे बहुत पसन्द करेंगे। यह मेरी सच्ची राय है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी

गये अपने हृदय को ढूँढ रहे हैं! लक्ष्मी ने उनके (हरि के) हृदय को चुरा कर अपने ही हृदयमें कहीं रक्खा होगा, उसे ढूँढनेके लिए मानों वह वहाँ पर हाथ से टटोल रहे हैं ।

मक्खन चुरा कर थालक कृष्ण किसी अन्धेरे स्थानमें छिपनेके लिए भागे जा रहे हैं । उन्हें संवीधन करके एक भक्त कहता है :—

द्वीरभारमपहृत्य शंकया स्वीकृतं यदि पलायनं त्वया ।

मानसे मम नितान्ततामसे नन्दनन्दन कथं न लीयसे ॥३॥

३ भाषार्थः—हे नन्दनन्दन ! मक्खन चुराकर डर के मारे यदि आप कहीं भाग रहे हैं और किसी अन्धेरे स्थानमें छिपना चाहते हैं, तो मेरे उस मनमें आकर क्यों नहीं छिप जाते जिसमें मोह और अज्ञानरूपी अन्धकार भरा हुआ है । चेसा अन्धकारमय स्थान आपकी छिपनेके लिए और कहां मिलेगा ?

एक विष्णु का अनन्य भक्त विष्णु को संवीधन करके कहता है :—

रानाकरस्तथ गृहं गृह्णिषी न पद्मा,

किं दियर्मासि भवति जगदीश्वराय ।

राधागृहीतमनसः मनसोऽसि देव्यं,

तस्मै गृह्णाण्य पदपंकजमर्पितं तै ॥ ४ ॥

४ भाषार्थः—स्वमुद्र, जिसमें रत्न भरे हुए हैं, आपका नियास-स्थान है । मातात् गृह्णी आपकी पत्नी है, और आप स्वयं सोनी छोबोंके स्वामी हैं, भला मैं आपकी क्या वे सकता हूँ ! पर हाँ, एक शीत आप के पात नहीं है और उसे मैं आपकी

क्या हम गज से भी और गोवर्द्धन पर्वत से भी भारी हैं किं
हमारा अब भी आप उद्धार नहीं करते ?

एक भक्त महादेव को संबोधन करके कहता है:—

पृष्ठं भवन्तमयमुद्वहते कदाचिदिता-

यता यदि तवैति दयास्पदत्वम् ।

स्वामिब्रह्मं तु हृदयेऽन्वहमुद्वहामि त्वा

मित्यतःकथमहो न तवानुकम्प्यः ॥७॥

७ भावार्थ:—भगवन् ! यह नान्दी बैल आपको कभी कभी
अपनी पीठ पर सवार कराकर इधर उधर ले जाता है, इतनेहीसे
यह आपकी परम कृपा का पात्र बना हुआ है। नाथ ! हम
तो प्रतिदिन और प्रतिक्षण आपको अपने हृदयमें लिये फिरते
हैं, पर आप हमें अपनी कृपा का पात्र क्यों नहीं बनाते ?

कोई बहुत ही कामी विष्णु की भक्ति किया चाहता है पर
मन उसका विष्णुके चरणोंमें नहीं रमता, तब विष्णु का भक्त
कामदेव को संबोधन करके कहता है:—

मदन ! परिहर स्थितिं मदीये मनसि मुकुन्दपदारविन्दधाम्नि ।

हरनयनकृग्रानुना कृगोऽसि म्मरसि न चक्रपराक्रमं मुरारे ॥ ८॥

८ भावार्थ:—कामदेव ! तुम अब मेरे मन से हट जाओ,
उसमें अब विष्णु भगवान के चरणारविन्दों का घास होने लगा
है। तुम तो पहिले ही से महादेव के तीसरे नेत्र की अग्निसे
दग्ध होकर दुर्बल हो रहे हो, अभी तुम्हें विष्णु भगवानके चक्र
की श्पष्ट नहीं है।

एक भक्त मुक्त हो जाने पर, महादेवको संबोधन करके कहता है:—

वयुं प्रादुर्भावाद्नुमितमिदं जन्मनि पुरा

पुरारि ! न प्रायः क्वचिदपि भवन्तं प्रखतवान् ।

नमन् मुक्तं संप्रत्यहमतनुरयोऽप्यनतिभक्तं

मद्दिश ! चन्तव्यं तदिदमपराचडयमपि ॥८॥

६ भावार्थः—हे महेश ! इस जन्ममें शरीर धारण करनेसे मैं अनुमान करता हूँ कि मैंने पूर्वजन्ममें आपको कमी भी प्रणाम नहीं किया। यदि मैंने पहले जन्ममें आपको प्रणाम किया होता तो मेरा यह जन्म कमी न होता और न मैं फिर शरीरधारण करता। इस जन्म में मैं आपको अब प्रणाम करता हूँ, जिससे मैं मुक्त हो जाऊँगा और मुझे पुनः शरीरधारण न करना पड़ेगा। अतएव मैं आपको भविष्यमें भी प्रणाम न करूँगा ? क्योंकि बिना शरीर के मैं आपको प्रणाम कैसे कर सकूँगा। इसलिए हे भगवन् ! मेरे इन दोनों, पूर्वकालके और उत्तरकालके अपराधों को क्षमा कीजिए।

संयोग और वियोग ।

—:०:—

प्रियतम के वियोग में कोई स्त्री अश्रुधारा बहाकर अपने स्तनों को भिगो रही है। इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है:—

भंगानि मे दहतु कान्तवियोगवद्भिः

संरक्ष्यतां प्रियतमो हृदि वतंते यः ।

श्याशया भ्रमिमुखी गलदश्रुवारि-

धाराभिरणमभिषिञ्चति हृत्प्रदेमम् ॥९॥

१० भावार्थ:—विरहकी आग मेरे सारे शरीर को चाहे भस्म कर दे, किन्तु मेरे हृदय में सदा निवास करने वाले मेरे प्रियतम को इस आग की आंच भी न लगने पावे । बस, इस आशय से वह चन्द्रमुखी लगातार अश्रुधारा बहाकर अपने धियोगतप्त हृदयस्थान को सोंच रही है । उसकी अश्रुधारा आँखोंसे बहकर छाती पर लगातार गिर रही है । देखिए, इतनी सी बात को कविने कैसे अच्छे ढंगसे कहा है ।

गोवर्धन सप्तशतीका यह श्लोक सच्चे प्रेमके विषयमें है:—

अन्यमुखं दुर्बाहो य प्रियवदने स एव परिहासः ।

इतरेन्धनजन्मा यो धूम सोऽगुरुभवो धूप ॥११॥

११ भावार्थ:—जो बात दूसरे के मुखसे कही गई है वह गाली गिनी जाती है, पर, वही बात अपने प्रियतमके मुखसे कही जाय तो केवल हँसी मज़ाक समझी जाती है । सच है, सामान्य काष्ठके जलनेसे निकला हुआ जो धूआं “धूम” के नामसे पुकारा जाता है, वही यदि अगुरु, के जलनेसे निकले तो “धूप” कहलाता है । प्रेम की विचित्र गति है !

प्रियतमके परदेश जानेके समय पत्नी रोने लगी । इस पर पति कहता है:—

अग्रतः यावत्समये कुरु मंगलानि

किं रोदिवि प्रियतमे ? यद् कारणं मे ।

३ प्राणनाथ ! विरहानसतोप्रताप-

धूमेन वारि गलितं भ्रम क्षोभनाभ्याम् ॥१२॥

१२ भावार्थ:—प्रियतमे ! मेरे प्रस्थान करनेके समय तुम्हें

मंगलाचार करना चाहिए, सो न करके तुम रो रही हो । इस का कारण तो मुझे पतलाभो । इस पर वह उत्तर देती है,—
हे प्राणनाथ ! तुम्हारे वियोगरूपी अग्नि से उठा हुआ धूआं मेरी आँखों में लगा, उसी से मेरी आँखों से आंसू टपकने लगे । और कोई कारण नहीं है ।

किसी के चन्द्रमा को भी श्यामि चाले मुख तथा कमल के समान चरणों को तारुफ में कवि कहता है :—

उर्ध्वं धं यो भ्रम न मद्दते आतिवैरो निश्याया-

मिन्दोरिन्दौषरदलदृशा तस्य सौन्दर्यदर्पेः ।

नीतः शान्ति प्रसभमनया वस्तुकाव्येति श्यां-

द्वग्ता मन्ये ललिततनु ! तौ पादयोः पद्मलज्जोः ॥१३॥

१३ भावार्थः—“मेरा स्वभाविक बैरो चन्द्रमा रातमें मेरे विकाराश और अभ्युदयको नहीं सह सकता । उसी चन्द्रमाके सौन्दर्य दर्पको इस कमलनयनी ने अपने मुख की कान्ति से छूर कर दिया” । बस इसी क्षुशीमें अपनी हृत्तता प्रकाश करनेके लिए हे कोमलोगो ! कमल की शोभा तुम्हारे पैरों में भाकर लग गई ।

यदि स्वर्ण कोई अपने बैरो से न जीत सके और दूसरा कोई उस बैरो को हरा दे तो वह बहुत ही खुश होता है और हरानेवालेके चरणों पर अपने सिर को रख कर अपनी हृत्तता प्रकाश करता है । इसी तरह कमलने उस स्त्रीके मुखसे चन्द्रमा को पराजित देखकर अपनी हृत्तता प्रकाश करनेके लिए अपनी कान्ति उसके चरणों को समर्पित कर दी । उसके मुख और चरण चन्द्रमा और कमल से भी

सुन्दर हैं, सिर्फ इस बात को कविने कितनी खूबी के साथ वर्णन किया है ।

कोई प्रेमी अपनी प्रियतमा का कुशलमंगल एक दूतीसे पूछ रहा है । वह दूती अभी अभी उसकी प्यारी का संदेश ले कर आई है । इस श्लोक में इन्हीं दोनों की बातचीत है । श्लोक बहुत ही भाव पूर्ण और चुभता हुआ है :—

कुम्भं तस्या ? जीवति, तत्कुम्भं पृच्छामि, जीवतीत्युक्तम् ।

पुनरपि तदेव कथयसि, मृता न कथयामि या श्रुति ? ॥१४॥

१४ भावार्थः—उसकी कुशल तो है ? हाँ जीती है ! अरे हम उसकी कुशल पूछते हैं ? कह तो दिया जीती है ! फिर फिर उसी बात को कहती जाती हो ? तो क्या मैं कह दूँ कि वह मर गई जब कि उसमें सांस बाकी है ?

“किसी तरहसे आपके वियोगमें जी रही है” इस इतनी बात को कविने कैसे अच्छे ढंगसे कहा है !

घने अन्धकार में अपने चारके पास जाती हुई किसी अभिसारिका नायिकासे कोई प्रश्नोत्तर करता है :—

क प्रस्थितासि करभोर ! घने निग्रीधे ?

प्राणाधिको वसति यत्र जन प्रियो मे ।

एकाकिनौ वद कथ न विभेपि बाले ?

नन्वस्तिपुद्भितमरो मदन सहाय ॥ १५ ॥

१५ भावार्थः—सुन्दरि ! ऐसे घने अन्धकार में कहाँ जा रही हो ? जहाँ मेरा प्राणसे भी प्यारा प्रियतम रहता है वहाँ जा रही

हैं। थाले ! अकेली जाते हुए तुम्हें डर नहीं लगता ? अकेली कहां हैं, धनुषबाण लिए कामदेव जो मेरे साथ साथ जा रहा है। -

निम्न लिखित श्लोक के सवन्ध में मयूर और बाण के विषय में एक कथानक प्रचलित है। ऐसा कहा जाता है कि बाण मयूर कविके बहनोई और बड़े मित्र थे। किसी दिन मयूर कवि रातके पिछले पहर जाग उठे और उन्होंने कई श्लोक बना डाले। उन्हें बहुत रसीले और मनोहर समझ मारे उत्सुकताके वे अपने मित्र बाण कवि को सुनानेके लिए उनके गृह-द्वार पर पहुंचे। बाण कवि ठीक उसी समय अपनी प्यारी पत्नी, मयूर कवि की बहिन को, जो मान कर बैठी थी, प्रसन्न करते हुए, यह श्लोक रच कर सुना रहे थे। तीन चरण सुना कर जबतक वे चतुर्य चरणके शब्द सोच रहे थे तबतक मयूर कवि यहां जा पहुंचे और स्वयं चतुर्य चरण की पूर्ति करते हुए बोले:—“स्तनप्रत्यासत्या हृदयमपि ते चण्डि कठिनम्”। यह सुनतेही बाण कवि प्रसन्नता से भरे बाहर निकल आये और मयूरसे मेट की। बाण की स्त्री ने अपनी क्रीडा में ऐसा रंगमंग देख, भाईको शाप दिया कि वह कोढ़ी हो जाय। मयूर कोढ़ी हो गये और सूर्यशतक बनाने पर उस रोगसे छुटकारा पाया। सूर्यशतक रचकर मयूरने अपना कोढ़ दूर किया ऐसा काव्य प्रकाशमें भी लिखा मिलता है।

गतमाया रात्रि, लघतनु प्रथो प्रौर्यत इव,
 प्रदीपोऽयं निद्रावप्रमुपगतो घूर्णत इव ।
 प्रथामान्त. कोपस्तदपि न चदासि कुधामहो,
 स्तनप्रत्यासत्या हृदयमपि ते चण्डि कठिनम् ॥ १६ ॥

१६ भावार्थ :—रात भय बीत सी गई है । चन्द्रमा भी अथ प्रकाशहीन होकर अस्त होनेको है । यह दीपक भी जो रात भर जागा है, अब नीन्दमें आकर आँघाई ले रहा है । पत्तिके प्रणाम करनेसे क्रोध अन्त हो जाना चाहिए, पर हमारे प्रणाम करने पर भी क्रोध नहीं छोड़ती हो । मालूम होता है कठोर स्तनोंके पास रहते रहते तुम्हारा हृदय भी कठोर हो गया है ।

एक दूती किसी विरहविधुरा स्त्री की मरणासन्न दशा का वर्णन उसके प्रेमपात्र से करती हुई कहती है:—

तव विरहविधुरबाला सद्यः प्राणान् विमुक्तवती ।

इलंभमौदशमंगं मत्वा न ते पुनस्तामजहूः ॥ १७ ॥

१७ भावार्थ:—तुम्हारे विरहमें व्याकुल होकर उस बालाने तुरन्त ही अपने प्राणों को छोड़ दिया । किन्तु प्राणोंने यह सोचा कि ऐसे कोमल अंग रहने को कहा मिलेंगे इसलिए उन्होंने उसे न छोड़ा । “यह किसी तरह अथ तक जीवित है और विरह के दिनों को काट रही है” इस इतनी सी बातको किसी खूयीके साथ कविने कहा है ।

एक दूती किसी स्त्री की विरहावस्थामें भी सुन्दरताका वर्णन करती हुई उसके धूर्त प्रियतम से कहती है:—

तथास्त्वदेकमनसः स्मरवाण्यवयैः

काश्यं वपुः शठ विभक्तिं यथा यथैव ।

श्लोकयिताश्रयतयेवतथा तथैव ।

कान्तिर्धनो भवति दीर्घं विलोचनायाः ॥ १८ ॥

१८ भावार्थ — हे शठ ! तुम्हारे चिन्तामें सूखी जाती हुई उस मृगनयनी का शरीर कामदेव की वाणवपां से ज्यों ज्यों दुबला होता जाता है त्यों त्यों उसके शरीर की कान्ति और भी घनी होती जाती है । क्योंकि पहले शरीर दृष्टपुष्ट होने से उसका सौन्दर्य अधिक स्थान में फैला हुआ था, अब शरीर के दुर्बल होजाने से वही सौन्दर्य सकुचित होते होते और भी घना हो गया है ।

किसी प्रगल्भानायिका का वर्णन इस श्लोक में अच्छा दिया गया है । स्त्रीके पादप्रहार करने पर पति कहता है —

दासे ज्ञतागसि भवत्युचित प्रभूणा
 पादप्रहार इति सुन्दरि ! नास्मि दूषे ।
 लघत्कठोरपुलकाकुरकष्टकाग्रै
 यन्निवृत्ते नृदु पद ननु सा व्यथा मे ॥ १८ ॥

१९ भावार्थ :— मैं आपका दास और अपराधी हूँ और आप मेरे प्रभु हैं । प्रभुओं का, अपराधी सेवक को लात मारना उचित ही है । अतएव हे सुन्दरि ! आपके प्रहारसे मुझे दुःख इस बात का है कि आपके सुकुमार पैर मेरे शरीर में उठे हुए कठोर पुलकरूपी काष्ठों से बिंध गये होंगे, जिससे आपको बहुत पीडा हुई होगी ।

संस्कृत भाषा में "मन" शब्द नपुंसकलिंग है, इस पर किसी कवि की सूझ है —

नपुंसकमिति चात्वा प्रियायै प्रेषित मन ।
 तच्च तत्रैव रमते हता पाणिनिना वयम् ॥१०॥

२० भावार्थः—मैंने यह समझकर कि “मन” नपुंसक है उसे अपनी प्रिया के पास दूत बनाकर भेजा । किन्तु वह तो वहीं रम गया, आने का मन भी नहीं करता । सचमुच पाणिनिने बड़ा धोखा दिया । न पाणिनि उसे नपुंसकलिंग लिखते न हम उसे वहां भेजते ।

एक विरहिणी स्त्री ईश्वरसे प्रार्थना करती हुई कहती हैः—

पंचत्वं तनुरेतु, भूतनिवहाः स्वं स्वं विग्रत्वीषितं,
याचे त्वां द्रुहिण ! प्रणम्य शिरसा भूयोऽपि भूयान्मम ।
तद्वापीषु पयस्तदीयसुकुरे ज्योतिस्तदीयालय-
व्योमि व्योम, तदीयवल्गुनि धरा, तत्तालवृन्तोऽनिलः ॥२१॥

२१ भावार्थः—मेरा शरीर पंचत्व को प्राप्त हो, तथा मेरे शरीर के पृथिवी आदि पांचों तत्त्व यथाक्रम अपने अपने तत्त्व में मिल जायं, कोई डर नहीं ! किन्तु परमेश्वर से यह विनयपूर्वक प्रार्थना है कि पांचों तत्त्व इस क्रम से मिलें कि मेरे शरीरका जलतत्त्व उस सरोवरमें मिल जाय जिसमें मेरा प्रियतम स्नान करता है, तेजस्तत्त्व उस दर्पण में मिल जाय जिसमें वह अपना मुख देखता है, आकाशतत्त्व उस गृहाकाश में मिल जाय जो उसका निवासस्थान है, पार्थिवतत्त्व उस मार्गमें मिल जाय जिसपर वह चला करता है, वायुतत्त्व उस पंखे में मिल जाय जिससे वह हवा लेता है । इसी भावका एक हिन्दी दोहा भी हैः—

हर न मरन, विधि विनय यह, भूत मिलें निजवास ।
प्रियहित पापी, मुकुर, मग, धीजन, आंगन अकाश ॥

इस श्लोक में किसी कविने नायक-नायिका के परस्पर-प्रेम-दर्शन का अच्छा वर्णन किया है । दोनों अपनी अपनी अट्टालिका पर खड़े हुए एक दूसरे को देख रहे हैं, इसपर कवि कहता है:—

परस्वराक्षोकनरञ्जुरेया दृष्टान्तरादृष्टभुवि प्रवडा ।

गतागतं निमंयमत्र युनोर्नटौ विधत्तो मनसौ नितान्तम् ॥२१॥

२२ भावार्थ:—एक दूसरेका परस्परदर्शन जो है वही एक डोरी है, जो एक अट्टाली से दूसरी अट्टाली तक बन्धी हुई है । उस पर दोनों युवक और युवतीके मन रूपी नट निश्शङ्क होकर आ जा रहे हैं ।

पतिने परदेश जाने का निश्चय किया है, सिर्फ इस समाचार से ही पत्नी की जो दशा हुई वह इस श्लोक में दिखलाई गई है । श्लोक बहुत ही भावपूर्ण तथा हृदयग्राही है:—

प्रस्थानं बलयैः कृतं, मियसखै रसै रजसं नतं

पृथ्वा न दृग्मासितं, व्यवसितं चित्तं न गन्तुं पुरः ।

यातुं निश्चिन्नेतसि प्रियतमे सर्वं समं प्रस्थिताः

गन्तव्ये सति जीवित ! मियसुहृत्सार्थः किमुव्यज्यते ॥२१॥

२३ भावार्थ:—यह सुनतेही कि उसके प्राणनाथ ने जाने का निश्चय कर लिया है, वह इतनी दुबली होगई कि कड़े हाथों से चले गये, आंसू लगातार आंखोंसे जारी हो गये, धैर्य एक क्षण भर के लिए भी न ठहरा, और चित्त तो आगे ही जाने के लिए तैयार होगया । खबर सुनते ही सबके सब एक साथ मुझे छोड़कर प्यारे का साथ देने को भागे । तो हे प्राण !

तुम्हें भी तो एक रोज़ जानाही है, तुम भी प्रियतम का साथ देने के लिए क्यों नहीं चले जाते ।

पति पत्नीमें कलह हुई, पत्नी रूठ गई । पति के मनाने पर दोनों में जो प्रश्नोत्तर हुए वही इस श्लोक में हैं ।

बालि ! नाथ ! विमुञ्च मानिनि ! क्वं रोषान्मया किं कृतं ।

खेदोऽस्मात् न मेऽपराधति भवान् सर्वेऽपराधा मयि ।

तत्किं रोदिषि गद्गदेन वचसा ? कस्याद्यतो वयते ?

नन्वेतन्मम, का तवाधि ? दयित्वा, नास्मोत्यतो वयते ॥२४॥

२४ भावार्थः—(पति सम्बोधन करता है) प्रिये ! (पत्नी) क्या प्राणनाथ ? (पति) है मानिनि ! क्रोध को छोड़ दे । (पत्नी) मैं क्रोध कर के करही क्या सकती हूँ ? (पति) हमारे ऊपर खेद । (पत्नी) भला मैं खेद क्यों करने लगी । क्या आपने कोई अपराध किया है, अपराध तो सब मैंने ही किये हैं ; (पति) तो फिर क्यों गद्गद कण्ठसे रो रही हो ? (पत्नी) किस के आगे रो रही हूँ ? (पति) मेरे आगे रो तो रही हो, (पत्नी) भला, मैं आपकी क्या हूँ जो आपके सामने रोज़ ? (पति) तुम मेरी प्रियतमा हो, (पत्नी) प्रियतमा नहीं हूँ इसीसे तो रो रही हूँ !

एक दृती किसी विरहविधुरा बाला की दशा का वर्णन उस के प्रियतम से करती हुई, कहती हैः—

मद्विलासद्वसभरिते तव हृदये सुभग मा अमान्ती ।

अनुदिनमनन्यकर्मा अङ्गं तनुमपि तनूकरोति ॥ २५ ॥

२५ भावार्थः—हे सुभग ! तुम्हारे उस हृदय में प्रवेश पाने के

लिप, जिसमें हजारों खियां भरी हुई हैं, अतएव जिसमें बिल-कुल स्थान नहीं है, वह अमागी अपने शरीर को, जो आपही बहुत कोमल और दुर्बल है, दिन प्रतिदिन और भी दुर्बल बना रही है कि कदाचित् अब प्रवेश कर सके । आजकल उसे केवल यही एक काम रह गया है ।

वह आपके वियोगमें बहुत ही दुर्बल हो गई है इस इतनी बात को कविने किस धूवी के साथ कहा है । यह श्लोक प्राकृत भाषा की गाथा सप्तशती के एक श्लोक से उल्था किया गया है । जो यों हैं.—महिलासहस्सभरिण तुह द्विष्य सुहृद ! सा अमावन्ती । अणु दिणमण रण फम्मा अर्गं तणु अं वि तणुपइ ।

पति के परदेश जाने के समय पत्नी कहती है :—

“मा याची” त्यपमङ्गल, “त्रज” किल स्नेह शून्यं वच ।

“क्षिडेति” प्रभुता, “यथाकचि कुरुष्वै” धाम्युदासीनता ।

“नो जीवामि विना त्वये”ति वचन संभायते वा न वा

तन्माग्निचय नाथ ! यत्समुचितं वक्तुं त्वयि प्रस्थिते ॥२६॥

२६ भाषार्थः—“आप मत जाय” यदि यह कहें तो अमंगल समझा जायगा, “आप जाय” कहें तो यह स्नेह शून्य बात समझी जायगी, “ठहरें” यदि यह कहें तो प्रभुता समझी जायगी, “जैसे आप चाहें वैसे करें” इससे रूपापन झलकता है, “आपके बिना मैं नहीं जी सकती” यह बात कदाचित् आप विश्वास न करें, तो हे नाथ ! मुझे बतलाइए कि आपके प्रस्थान

के समय में क्या फहं ? भारतेन्दु वा० हरिश्चन्द्रने इसका अनुवाद हिन्दीमें बहुत अच्छा किया है, यथा—

रोकहिं जो तो अमंगल होय,
औ प्रेम नसै जो कहौ “प्रिय जाइये” ।

जो कहौ “जाइनुह” तो समता,
जो कछू न कहौ तो सनेह नसाइये ॥

जो कहौ “जौहीं न आप विना,”
तो कहौ हरिचन्द्रनू क्यों पतिआइये ।

तासों पयान समै तुम्हरे दम का कहैं आपै हमै समुझाइये ॥

एक बहुत ही भोलीभाली नववयस्का मुग्धा नायिका है । वह बेचारी जानती भी नहीं कि मान कैसे करना होता है । और उसका धूर्त पति उसके भोलेपनका अनुचित लाभ उठाकर मनमानी किया करता है । इस पर उसकी एक प्रौढ़ा सखी उसे आन वान के साथ रहने की सलाह देती हुई कहती है:—

मुग्धे ! मुग्धतयेव नेतुमखिल, कालं किमारभ्यते ?

मानं घटस्व ! वृत्तिं यधान ! ऋचुतां दूरे कुरु प्रेयसि ।

सख्यै वं प्रतिबोधिता प्रतिवचसात्माद् भौतानना

नीचैः शंस ! इदि स्थिती चि ननु मे प्राणेश्वरः शीष्यति ॥१७॥

२७ भाषार्यः—ये भोलीभाली ! क्या अपनी सारी जवानी तू इसी तरह अल्हड़पन में यिताना चाहती है ? ज़रा अभिमान किया कर ! धैर्य के साथ रहना सीप ! अपने प्रियतम के साथ सीपे प्यपहार को छोड़ दे । अपनी सखी से इस तरह भमझाई गई, उस मुग्धा ने बहुत डर कर जवाब दिया

“अरे धीरे से बोल ! मेरे हृदय में बैठा हुआ मेरा प्राणनाथ कहीं सुन न ले” । भोलेपनका अन्त है ! इसी भावको लेकर विहारिने यह दोहा लिखा है :—

सखी सिखावति मानविधि सैनन वरजति बाल ।

हृष्य कहु मो हिय बसत सदा विहारी लाल ॥

किसी स्त्री का पति या प्रेमी रोज़ रोज़ कहा करता था कि “मैं जाता हूँ”, “मैं जाता हूँ” इस पर एक दिन वह कहती है :—

यदि यास्यसि नाथ ! निश्चितं यामि यामि वचनं हि मा वद ।

अशनेः पतनं न वेदनं पतनज्ञानमतीव दुःसहम् ॥ २८ ॥

२८ भावार्थः—हे नाथ, यदि तुमने जाना निश्चय ही कर लिया है तो यह क्यों बारबार कहते हो कि “मैं जाता हूँ”, “मैं जाता हूँ” । जाना हो तो चले जाइये, कृपा करके यह वचन बार बार मत कहिए । क्योंकि बिजलीका गिरना दुःखदायक नहीं होता, किन्तु यह बहुत ही दुःखदायक होता है यदि मालूम हो जाय कि भर बिजली गिरनेवाली है । इसी तरहसे आपका चले जाना इतना कष्टदायक न होगा, क्योंकि आपके जाते ही मेरे प्राण इस शरीरसे तुरन्त निकल जायेंगे, किन्तु आपका बारबार मुझे बतलाना कि “मैं जाता हूँ” “अब बिजली गिरने वाली है” इस ज्ञान के समान है ।

परदेश जाने के समय कोई मनुष्य अपनी पत्नी की दशा अपने मित्रसे कह रहा है :—

याताः किं न मिलन्ति सुन्दरि ! पुनश्चिन्ता त्वया मतकृते,

नो कार्या नितरां कृशासि कथयत्येवं सवाप्से मयि ।

लज्जा मन्थरतारकेण निपतत्पीताश्रुणा चक्षुषा
दृष्ट्वा मां, हसितेन भाविमरणोत्साहस्तया सूचितः ॥ २६ ॥

२६ भावार्थ—:“हे सुन्दरि ! क्या, जो विछुड़ते हैं वे फिर नहीं मिलते, तो फिर मेरे लिए इतनी चिन्ता क्यों कर रही हो ? तुम इतनी दुबली क्यों हो रही हो ?” इस तरहसे मेरे आंसू बहाकर कहते ही उसने आंसुओं को छिपा कर, लज्जासे शिथिल नेत्रोंसे मेरी ओर देखा और हंस कर अपने भविष्य मरने के उत्साह को प्रगट किया । पति के उत्साह दिलानेसे उसने हंस तो दिया किन्तु उस हंसीसे उसका मरने में उत्साह टपक रहा था । अर्थात् पति के जाते ही उसके प्राणोंका का भी जाना निश्चित था ।

पति परदेश जा रहा है, उस समय पति और पत्नी में जो बातें हुई हैं वही इस श्लोक में हैं । इस श्लोक का भाव बहुत ही उच्च तथा हृदय में चुभने वाला है: ---

यामः सुन्दरि !, याहि पान्थ !, दयिते ! शोकं वृथा मा कृथाः,
शोकस्ते गमने कुतो मम ? ततो वाप्यं कथं मुंचसि ? ।
शीघ्रं न व्रजसीति मां गमयितुं कस्मादियं ते त्वया,
भूयानम्य सह त्वया जिगिमिषीर्जीवस्य मे संभ्रमः ॥ ३० ॥

३० भावार्थ:—(पति) प्रिये ! हम जाते हैं (पत्नी) अच्छा पथिक, जाओ । (पति) वृथा शोक मत करो । (पत्नी) भला तुम्हारे जाने पर मुझे शोक क्यों होने लगा ? (पति) तो आंसू क्यों बहा रही हो ? (पत्नी) इगलिये कि तुम जल्दी नहीं चले जाने । (पति) प्रिये ! तुम्हें क्यों इतनी जल्दी पड़ी है कि हम

चले जायँ । (पत्नी) मुझे जल्दी नहीं पड़ी है, मेरे प्राणों को जल्दी पड़ी है कि किसी तरह से तुम घरके बाहर निकलो तो वे भी तुम्हारा साथ देने के लिए मेरे शरीर से निकलें !

पतिके पत्नी से विदा लेते समय उस स्त्री की जो एशा हुई उसी को कवि बड़ी सूची के साथ इस श्लोक में वर्णन करता है—

यामोति प्रियपृष्ठायाः प्रियायाः कण्ठवर्त्मनि ।

वचोजीवितपोरासीद्वहिर्निःसरणे रणः ॥ ३१ ॥

३१ भावार्थः—पति ने परदेश जाते समय, पत्नी से विदा मागते हुए कहा,—प्रिये ! मैं अब जाता हूँ । इसपर उस स्त्री का गला रुंध गया और वह बेचारी कुछ बोल न सकी । उसके चुप रहने का असली कारण यह था कि उसके प्राणों और वचनों में युद्ध होने लगा । वचन कहते थे कि हम पहले कण्ठ से निकलें और प्राण कहते थे कि हम पहले निकलें । वक्ष इसी क्षण में वह बेचारी कुछ न बोल सकी ।

इसी भावका यह दोहा भी है :—

आज सखी हों सुनति हों पी फाटत पिय गीन ।

पी हिय छोड हैं पहिले फाटत कौन ॥

पति विदेश जानेको तैयार है उस समय पत्नीकी का दशा है, इसे कवि इस भावपूर्ण श्लोकमें कहता है !

वाचो मांगलिकी प्रयाणसमये जल्पन्व्यनत्ये जने

केलीमन्दिरमास्तायनमुचे विन्यस्तरकाम्बुजा ।

-निःश्वासग्लपिताधरा परिपतद्वाष्पाद्रवक्षोरुहा
वाला लोलविलोचना शिव ! शिव ! प्राणेशमालोकते ॥३२॥

३२ भावार्थः—प्राणेश्वरके जानेके समय, जबकि सब कुटुम्बके लोग मंगल पाठ कर रहे हैं, उस समय वह वाला, जिसके अंधरपुट दुःखकी सांस लेनेसे मुखझा गये हैं, और दोनों स्तन आंसुओंसे लगातार भीग रहे हैं, क्रीडामन्दिरके हरोखेमें अपने मुख कमलको रखकर चंबल नेत्रोंसे केवल जाते हुए प्राणनाथको देख रही है। पतिके परदेश जाते समय किसी परदेवाली नवययस्का स्त्री का हार्दिक भाव इस श्लोक में कवि ने अच्छा दिखलाया है। येचारी लज्जा के मारे पति से जाते समय पुल के यातचीत भी नहीं कर सकती ।

एक विरहिणी अपनी सपनी के द्वारा पति के पास भेजने के लिये मन्देशा कह रही है :—

धाच्यं तस्मै सहचरि ! भवद्भूरिविश्लेषवह्नी
स्नेहंरिन्द्रे भ्रम वपुर्दिदं काम होता जुहोति ।
प्राणानस्मै तदहमुचितां दक्षिणां दातुमीहे
तत्रादेशो भवतु भवतां, यस्वमेवामधीशः ॥ ॥ ३३ ॥

३३ भावार्थः—हे सपि ! उन से जाकर कहना कि कामदेव रूपी होता (यक्ष परानेवाला पुरोहित) मेरे शरीर को स्नेह रूपी घृत से प्रशस्त्रित किये गये तुम्हारी वियोगरूपी, अग्नि में दहन कर रहा है । धन उग्र पुरोहित को मैं प्राणरूपी दक्षिणा देना चाहता हूँ, किन्तु उग्र में धाप की भागा भी आवश्यकता है, क्योंकि उन प्राणों के मालिक तो धाप ही हैं । यदि धाप को

आज्ञा हो तो मैं इन प्राणों को त्याग कर वियोगतप्त जीवन से छुटकारा पा जाऊँ ।

एक कोमलांगी स्त्री विरहज्वर से पीड़ित है। उस की सखिया कमलदल से उसे हवा कर रहीं हैं। इसपर वह उन से कहती है:—

विरमत ! विरमत ! सख्यो ! नलिनीदलतालवृन्तपवनेन ।
हृदयगतोर्यं चह्निर्ज्ञादिति कदाचिज्ज्वलत्येव ॥ ॥ ३४ ॥

३४ भावार्थ:—सखियों ! कमलदल के पंखे से मुझे हवा मत करो ! मत करो ! मेरे हृदय में विरह की आग जो धीरे धीरे सुलग रही है, वह कहीं एकदम से भभक न उठे !

एक धूर्तपति अपनी पत्नी से रोज कहा करता था “हम दोनों तो एकमन दो तन हैं” । एक दिन अन्य स्त्री से संभोग कर जब वह थर लौटा तो उस के शरीर में रतिचिन्हों को देखकर ताने के साथ उस की पत्नी कहती है:—

सत्यमेव गदितं त्वया चिमो !

“जीव एक” इति यत् पुरावयोः ।

अन्यदारनिहिताः नखग्रणा

स्तावके वपुषि पीडयन्ति माम् ॥ ३५ ॥

३५ भावार्थ —स्वामिन् ! आप पहले जो कहा करते थे कि “हम दोनों के प्राण एक हैं” वह आज सच्चा साबित हुआ । यदि हम दोनों के प्राण एक न होते तो आप के शरीर में पड़े हुए अन्य स्त्री के नखचिह्न मुझे क्यों पीडा देते ।

षसन्त ऋतु में एक मृतक पथिक रास्ते पर एक आम के पेड़ के पास पड़ा हुआ मिला । इस पर एक कवि कहता है:—

सव्याधेः कृशाता, क्षतस्य रुधिरं दप्रस्य लालास्रुतिः
 किंचिन्नैतदिहास्ति, तत्कथमसौ पान्थस्तपस्वी मृतः ।
 आः ! हातं मधुलंपटैर्मधुकरैरारब्धकोलाहले
 नूनं ! साहसिकेन चूत मुकुले दृष्टिःसमारोपिता ॥ ३६ ॥

३६ भावार्थ :—यदि यह किसी धीमारी से मरा होता तो कम से कम दुबला तो होता; यदि कोई घाव होता तो लहू बहता; यदि सांप काटे होता तो मुंह से फिचकुर बहता होता । ये सब तो कुछ नहीं हैं, फिर यह बेचारा पथिक मरा कैसे ! अच्छा ! समझे, मधुके लालची भीरों की झनकार से खिंचकर इसने, अवश्य, साहस करके, आम की मंजरी पर एक दृष्टि डाल दी होगी ।

कोई फामी पुरुष अपनी प्रियतमा के वक्षःस्थल पर लटकते हुए मोतियों के हार को संयोजन करके कहता है :—

मूर्चीमुखेन सश्लेच पृत्तग्रणस्त्व
 मुक्ताफलाप ! स्तुष्टसि स्तनयोः प्रियायाः ।
 याणैः स्मरस्य शतशो विनिवृत्तमर्मा
 स्वप्नेऽपि तां कथमहं न विलोकयामि ॥ ३७ ॥

३७ भावार्थ—ये मुक्ताहार ! तुम सिर्फ एक बार सुई से छेदे गये हो और उन्नी से मेरी प्रिया के स्तनों पर रोज पड़े रहते हो और उन्म पर स्तुष्टन करते हो । अरे ! हम तो रोज फामदेव के याणों से सैकड़ों बार मर्मण्वातों में छेदे जाते हैं, परन्तु हमें तो स्वप्न में भी यह नहीं दिखलाई पड़नी ! स्तनों पर स्तुष्टन करना तो दूर रहा !

विदेश जाते हुए पति और पत्नी में जो बात चीत हुई
वही इस श्लोक में किसी कवि ने वर्णन किया है :—

स्मर्तव्या चयमिन्दुसुन्दरमुखि ! प्रस्तावतोऽपि त्वया
सत्यं नाथ ! यदि प्रदास्यति विधिर्जातिस्मरत्वं मम ।
एकस्मिन्नपि जन्मनि प्रियतमे ! जातिस्मरत्वं कथं
प्राणाः पान्थ ! समं त्वयैव चलिताः काद्यापि जन्मैकता ॥३८॥

३८ भावार्थ.—(पति) “चन्द्रमुखि ! मुझे भी कभी कभी स्मरण
करते रहना” । (पत्नी) “नाथ ! अद्यश्य स्मरण करुंगी यदि
मुझे जन्मान्तर की बात याद रहेगी ।” “(पति) प्रियतमे ! यह
तुम क्या कहती हो ?, इस एक ही जन्म में जन्मान्तर की बात
कैसी ? (पत्नी) हे पथिक ! प्राण तो तुम्हारे साथ ही जा रहे
हैं, अब वही जन्म और वही शरीर कैसा ।”

एक स्त्री अपने प्रियतम को लिखती है :—

स्मर्तव्याऽहं त्वया काले न स्मरिष्याम्यहं तव ।
स्मरणं चैतसौ धर्मं तच्चेतो भवता हृतम् ॥ ३९ ॥

३९ भावार्थ :—कभी कभी श्रुपा करके आप मुझे स्मरण कर
लिया करें । मैं तो आपका स्मरण कर नहीं सकती । क्योंकि
स्मरण करना चित्तका धर्म है, उस चित्त को आप चुरा ले गये
हैं । अतएव मैं आपको कैसे स्मरण कर सकती हूँ ।

अमरुशतक में एक श्लोक है जो अभगश्लेष का बहुत अच्छा
उदाहरण है । इसमें कविने “मुक्तानां” इस शब्द पर काम किया
है । मुक्त माने “मोती” और “मोक्षपद प्राप्त” दोनों हैं :—

हारोऽयं हरिणाक्षीणां लुठति स्तनमण्डले ।

मुक्तानामप्यवस्येयं के वयं स्मरकिङ्कराः ॥ ४० ॥

४० भावार्थ :—मोतियों की यह माला मृगनयनियों के स्तन-मण्डल पर लुण्ठन कर रही है। जब मुखों की (जो मोक्षपद प्राप्त हो चुके हैं उनकी) यह दशा है, तो हमारा क्या कहना जो कामदेव के दास हो रहे हैं।

सखीके द्वार द्वार कहने पर कि तू क्यों ज़ोर ज़ोरसे रोती है विरह विधुरा स्त्री उत्तर देती है :—

अनुदिन मतितीव्रं रोदिपीतित्व मुञ्चैः
सखि ! किल कुण्डये त्वं चाच्यतां मे मुर्धेव ।
हृदयमिदमनंगांभारसंगाद्विलीय
प्रसरति यहिरंभः सुस्थिते ! नैतदधु ॥ ४१ ॥

४१ भावार्थ :—“तू रोज़ रोज़ बहुत रोती रहती है” ऐसा कह कर हे सखी तुम मुझे क्यों व्यर्थको बदनाम किया करती हो। कामाग्निसे पिघल पिघल कर यह हृदय पानी होकर बाहर निकल रहा है! हे विरह पीड़ासे अनेभिन्न स्वस्वचित्तवाली यह थांसू नहीं है। इसी अर्थका विहारोका यह दोहा भी है : ..

तज्यो आंच अति विरहकी रहगे प्रेम रस भीज ।
नैननि पे मग जल यहै हियो पसीज पसीज ॥

पति परदेश जा रहा है, उस समय पति और पत्नीके बीचमें जो बातचीत हुई घड़ी इस श्लोकमें है :—

घाटे ! कल्पपि घामराणि गमय त्वं मीलवित्वा/दृशी,
स्वस्ति ! स्वस्ति ! निमीलयामि नयने यापन्न शून्या दिशः ।
भायाना घयानामिष्यति सुहृदगम्य भाग्योदयैः ।
गन्देशं चर कल्पयामिन्द्रविलीर्षेषु सोपांजलि ॥ ४२ ॥

४२ भावार्थ :—(पति) प्रियतमे ! थोड़े दिनकी तो बात है, आंसू मूदकर कुछ दिन तुम किसी तरहसे धिता दो । (पत्नी) हां ! हां ! मैं आंखों को तबतक बन्द किये रहूंगी जबतक दिशाएँ मेरे लिये बिलकुल शून्य न हो जायंगी । (पति) घबड़ानेकी बात नहीं है, मैं बहुत जल्द लौट आऊंगा । (पत्नी) अगर आप लौटेंगे तो अपने मित्र और घरवालोंके भाग्य से । (पति) जो कुछ तुम चाहती हो वह कहो ! बोलो क्या कहना चाहती हो ? (पत्नी) जब किसी तीर्थमें जाना तो मेरे नाम तिलांजलि दे देना वस यही मैं चाहती हूँ ।

कैसा बढ़िया व्यंग्य इस श्लोकमें पत्नीने कहा है !

प्रियतमके परदेशसे आनेपर किसी स्त्रीकी दशा इस श्लोक में बड़े अच्छे ढंग से वर्णन की गयी है :

दृष्टिर्वन्दनमालिका, स्तनयुग्मं लावण्यपूर्णां घटी,

शुभ्राणां प्रकरः स्मित सुमनसा, वक्षप्रभा दर्पणः ।

रोमांचोद्गम एव सर्पयरुणः, पाणो पुनः पल्लवी,

स्वांगीरेव गृह प्रियस्य विगतस्तन्व्या कृतं मंगलम् ॥ ४३ ॥

४३ भावार्थ :—जब प्रियतम घरमें प्रवेश करने लगा तो उसकी प्रियतमाने अपने अंगोंहीसे यथोचित मंगलाचार पूरा किया । उसके एन्द्रक देखनेने बन्धनवार का, दोनों स्तनोंने लावण्यरूपी जल से भरे हुए दो घड़ोंका मुस्कराहटने सफेद फूलकी बर्षाका, मुखकी कान्तिने दर्पणका, रोमांचने ससोंके कणोंका, हाथोंने पल्लवोंका काम दिया ।

इस श्लोकमें कोई अपने मित्रको उसकी विरह विधुरा प्रियतमाका हाल पत्र लिखकर सूचित करता है :—

यावद् यावद् भवति कलया पूर्ण कामः शशाक
 स्तावत्तावद्दद्य तिमयवपुः क्षीयते स मृगाक्षी ।
 मन्ये धाता घटयति विधुं सारमादाय तस्या—
 स्तस्माद्यावन्न भवति सखे ! पूर्णिमा तावदेहि ॥ ४४ ॥

४४ भावार्थ :—जैसे जैसे चन्द्रमा एक एक कला बढ़ता जाता है वैसे वैसे उस मृगनयनी—आपकी प्रियतमा—का सुन्दर शरीर क्षीण होता जाता है । ऐसा जान पड़ता है कि ब्रह्मा उसके शरीरका सार खींच खींचकर चन्द्रमाको बना रहा है । इसलिये मित्र ! जब तक पूर्णिमा न होने पावे तब तक मैं चले आओ । नहीं तो फिर हाथ मल मलकर पछताना पड़ेगा । क्योंकि पूर्णिमाके बाद उसका अस्तित्व कहा ।

नायिका अचयत्र वर्णन.

किसी टीी के अधर की तारीफ में एक कवि कहता है :—

अधरोऽयमधीराक्ष्याः घन्धुजीव प्रमाहरः ।
 अन्यजीवप्रमाहन्त ! हरतीति किमद्भुतम् ॥ ४५ ॥

४५ भावार्थ.—इस चञ्चल नेत्रवालीके अधर घन्धुजीव (गुठ दुपहरिया के फूल) की प्रभाको हरने वाले हैं, अर्थात् उनमें भी अधिक लाल और सुन्दर हैं । जब वे घन्धुजीव (मरने भाई के जीवन) की प्रभाको हर लेते हैं तो दूसरों के जीवन की प्रभा को हर लेंगे इसमें आश्चर्य ही क्या है !

“बन्धुजीव” इस शब्दमें श्लेष है । इसके माने “गुल दुपहरिया का फूल” तथा “भाई का जीवन” दोनों हैं ।

एक कवि किसी स्त्री को संबोधन करके कहता है :—

कठिनपीनपयोधरताडिता,
तव विराजति भामिनि कंचुकी ।
विजयिनस्त्रिपुरारिजिगीपया,
पटकुटोयमनोभवभूपते : ॥ ४६ ॥

४६ भाषार्थ :—हे सुन्दरि, कठोर और पीन पयोधरों के ऊपर तुम्हारी कंचुकी अतीव शोभा दे रही है । ऐसा मालूम होता है कि कामदेव रूपी राजाने महादेव के विजय करने के लिये खेमा गाड़ रखी हो ।

कोई स्त्री अपने स्तनों को क्यों छिपाए हुए है इस पर एक कवि बड़ी अच्छी उत्प्रेक्षा करता है :—

तन्वद्गथाः स्तनयुग्मेन मुखं न प्रकटीकृतम् ।
हाराय गुणिते स्वातं न दर्शयति लज्जया ॥ ४७ ॥

४७ भाषार्थ :—इस लुकुमार अङ्गवाली स्त्री के स्तनों ने मारे शर्म के अपने को नहीं प्रकट किया । गुणवाले (डोरीवाले) हार को हमने अपने ऊपर स्थान नहीं दिया यही उनके शर्म का कारण था । “गुणिते” इस शब्द में यहां पर श्लेष है । “गुण” माने डोरी और अच्छी बातें दोनों हैं । अतएव “गुणिते” का अर्थ यहां पर “गुणवाला” तथा “डोरी वा तागा में गुंथा हुआ” दोनों हैं ।

एक रसिक कवि अपनी प्रियतमा के साथ नदी में जलक्रीड़ा

करता हुआ अपनी पत्नी के मुख और चक्षुष्यल की छाया जल में पड़ती हुई देखकर कहता है:—

नेयं ते मुखमण्डल प्रतिकृतिच्छाया न हापेद्गवा
 वक्षोजी प्रतिविम्बितौ न सलिले जाने हि तथ्यं प्रिये ! ।
 अप्राप्याननसौभगं तव शशी मुक्ताचितैर्दामभिः ।
 कण्ठे हेमघटद्वय परिदधत् पानीयमध्यं गतः ॥ ४८ ॥

४८ भावार्थ :— हे प्रिये ! यह जो तुम जल में देख रही हो वह तुम्हारे मुख की छाया नहीं है, और यह हार जो तुम पहने हुए हो उस की भी परछाईं नहीं है, और न तुम्हारे दोनों उरोजों का प्रतिविम्ब ही यह दिखलाई पड़ रहा है । तो फिर है क्या ? । चन्द्रमा तुम्हारे मुख की सुन्दरता को न पाकर मुक्ताग्रथित डोरी से बन्धे हुए दो घड़ों को अपने कण्ठ में लटका कर शर्म के मारे डूबने के लिये पानी के अन्दर चला गया है । अर्थात् यह तुम्हारे मुख की छाया नहीं बल्कि शशी है, हार की परछाईं नहीं बल्कि मोती से गुथी हुई डोरी है, और तुम्हारे पीनपयोधरों का प्रतिविम्ब नहीं बल्कि ये दो घड़े हैं, जिन्हें गले के दोनों ओर लटका कर चन्द्रना पानी में डूब मरा है ।

घोईं स्त्री वार वार गेन्द को अपने हाथों से फेंक रही है । गेन्द खेलते खेलते उस का एक कमल जो वह कानों में पहिने हुए थी, उस के पैरों के पास गिर पड़ा । इसपर एक कवि कल्पना करता है :—

पयोधराकारधरोहि कन्दुकः करेण रोपादमिहन्यते मुहुः ।
 इतीय नेशाकृतिभीतमुत्पलं द्वियः प्रसादाय पपात पादयोः ॥४९॥

४६ भावार्थ :—इस गेन्द्र ने उस के पयोधरों के आकार की तुलना की है, इसलिये वह धारदार उस कामिनी के करों से ताड़न किया जाता है । मैं भी तो उस के नेत्रों के समान हूँ कहीं मेरी भी खयर इसी तरह से न ली जाय, वस इसी कारण से उस सुन्दरी को प्रसन्न करने के लिये वह कमल उसके चरणों पर गिर पड़ा

चन्द्रमा को ग्रहण लगनेवाला है, उस समय कोई किसी सुन्दरी स्त्री से कह रहा है :—

प्रविश इदिति गेहं मा वहिस्तिष्ठ कान्ते !

ग्रहणसमयवेला वर्तते शीतरश्मेः ।

तव मुखमकलंकं वीक्ष्य नूनं स राहु

प्रसन्ति तव मुखेन्दुं पूर्णचन्द्रं विहाय ॥ ५० ॥

५० भावार्थ :—सुन्दरि ! चन्द्रमा का ग्रहण अब लगने ही वाला है । इसलिये शट से घरके भीतर घुस जाओ, बाहर मत खड़ी रहो । मुझे डर लगता है कि तुम्हारे निष्कलंक मुखको देखकर राहु, पूर्णमासी के चान्द्रको छोड़कर, कहीं तुम्हारे मुखचन्द्र को न प्रस ले । इसी ढंग का एक उर्दूका शेर भी है :—

वाम पर नगे न जाओ तुम शय्ये महताव में ।

चान्दनी पड़ जायगी मैला बदन हो जायगा ॥

सुन्दर स्त्रियों के मुख की प्रशंसा में कोई कवि कहता है :—

यदपि विश्वधैः सिन्धोरन्तः कथंचिद्प्राजितं

तदपि सबलं चारु स्त्रीणां मुखेषु विलोक्यते ।

सुरभुमनसः श्वासामोदे, शशीच कपोलयो

रमृतमधरे, तिर्यग्भूते विषं च विलोचने ॥ ५१ ॥

५१ भावार्थः—जिन चीजों को बड़े कष्ट से देवताओं ने समुद्र के अन्दर से निकाला था वे सब की सब सुन्दरी स्त्रियों के मुख में दिखलाई पड़ती हैं । उनके सांस में स्वर्गीय वृक्षों के पुष्पों की महक, कपोलों में चन्द्रमा की शोभा, अधर में अमृत का स्वाद, और तिरछी नज़रों में ज़हर का सा असर है ।

कुचों की तारीफ में किसी कवि की अनोखी सूझी है :—

यन्न माति तदंगेषु लावण्यमतिसंभृतम् ।

पिण्डीरुतमुरोदेशे तत्पयोधरतां गतम् ॥ ५२ ॥

५२ भावार्थः—जो सुन्दरता और लवनाई उस कामिनी के अंगों में न समा सकी, उसी को विधाता ने गठरी में बाँधकर पयोधरों के रूप में रख दिया । जो चीज़ खर्च होने से बच जाती है उसे लोग गठरी में बाँधकर अलग एक स्थान पर रख देते हैं ।

चन्द्रमा की वृद्धि और क्षय पर एक कवि की उक्ति है :—

वर्द्धते मुखसादृश्यमवाप्तु हरिणीदृशः ।

क्षीयते भ्रूतुला मेतु मुभयोरक्षमो विधिः ॥ ५३ ॥

५३ भावार्थः—इस मृग नयनी के मुख की बराबरी पाने के लिये चन्द्रमा बढ़ता है । जब देखा जाता है कि वह मुख की तुलना नहीं पा सकता तो घटने लगता है कि कदाचिन् उसके भी की बराबरी पा जाय । किन्तु वह उसमें भी अटूतकार्य होता है । इसी भाव का एक फारसी का शेर भी है :—

महशुद् तमाम ताचो रुपे ऊ शयद् न शुद् ।

फाहीद् घाज़ ता रुमें अयरु शयद्, न शुद् ॥

फिस्मी स्त्री के सौन्दर्य की प्रशंसा में एक कवि कहता है :—

सा दृष्टा येन वा दृष्टा मुषिताः सममेव ते ।

हृदयं हृतमेकैरामन्योपां चक्षुषोः फलम् ॥ ५४ ॥

५४ भावार्थ :—जिन्होंने उसे देखा और जिन्होंने उसे न देखा दोनों ही उगे गये । जिन्होंने उसे देखा उनका हृदय चोरी हो गया, और जिन्होंने उसे न देखा उनकी आंखोंका फल चोरी हो गया । अर्थात् जिन्होंने उसे देखा उनका हृदय उस पर अनुरक्त हो गया और जिन्होंने उसे न देखा उनकी आंखें निष्फल हैं ।

युवायस्या के आते ही स्त्रियों के अंगों में क्या क्या परिवर्तन होते हैं, इस श्लोकमें बड़ी सुन्दरता के साथ दिखलाया गया है :-

श्रोणीभागस्य जति तनुतां सेवते मध्यभागः,

पद्भ्यां मुस्तास्तरलगतयः सन्धिता लोचनाभ्याम् ।

धत्ते वक्षः कुचसचिब्रतामद्वितीय च वक्त्रं,

तद्गाराणां गुणविनिमयः कल्पितो यैवनेन ॥ ५५ ॥

५५ भावार्थ :—नय यौवन के आते ही स्त्री के अंग एक दूसरे से गुणों के परिवर्तन करने में दत्तचित्त हुए । नितम्ब पतलेपन को छोड़ रही है और कटि देश उसे ग्रहण कर रहा है । अर्थात् नितम्ब स्थूल और कमर पतली होती जा रही है । पैर चंचलता को त्याग रहे हैं और नेत्र उसे स्वीकार कर रहे हैं । अर्थात् चाल में गंभीरता और आंखोंमें चंचलता आ रही है । उसका वक्ष स्थूल कुच (द्वितीय)—सहित और मुख अद्वितीय हो रहा है । इसी तरह उसके अंग आपसमें एक दूसरे से गुणों का बदला बदला कर रहे हैं ।

कोई स्त्री धार धार गेन्दको अपने हाथोंसे उछाल रही है । इस पर एक कवि गेन्दको संबोधन करके कहता है :—

विदितं ननु कन्दुक ! ते हृदयं प्रमदाधर संगमलुब्धमनाः ।

वनिताकरतामरसाभिहतः पतितः पतितः पुनरुत्पतसि ॥५६॥

५६ भावार्थ :—गेन्द ! मुझको तेरे हृदयकी बात मालूम हो गयी । तू इस कामिनीके अधर रसको पान करना चाहता है । इसी लिये उसके करकमलसे फेंका जाने पर भी तू धार धार गिरता है और धार धार उठता है ।

सब अङ्ग तो आभूषणसे सजाये जाते हैं पर केश बान्धे जाते हैं । इस पर किसी कविकी अनोखी सूझ है :—

शान्ते मन्मथसगरं रणभृता सत्कारमातन्वति

वासोऽदाजघनस्य पीनकुचयोर्हारं ध्रुतेः कुण्डलम् ।

विम्बोष्ठस्य च वीटिकां सुनयना पाण्यो रणत्कङ्कणे ।

पश्चाल्पिनि केशपाशनिचये युक्तोहिवन्धकमः ॥ ५७ ॥

५७ भावार्थ :—कामयुद्ध समाप्त होने पर लड़ाईमें आगे रहनेवालोंको पुरस्कार देनेके समय कामिनीने जंघाओंको साड़ी, कुर्चोंको हार, कानोंको कुण्डल ओठोंको पानकी धीड़ी और हाथोंको फंफण दिया । केश पीछे रहे इसलिये वह उन्हें बान्ध रही है । लड़ाईमें पीठ दिखलानेवालोंको सजा देना उचित ही है ।

किसी मृगनयनीकी आंखोंकी तारीफमें एक कवि कहता है :—

श्यामं सितं च सुदृशो न दृशोः स्वरूपं

पिन्तु स्पृष्टं गरलमेतदध्यामृतं च ।

नोचेत्कथं निपतनादनयोस्तदैव ।

मोहं मुदं च नितरां दधते युवानः ॥ ५८ ॥

५८ भावार्थ :—इस मृगनयनीकी आंखोंमें जो यह कालापन और सफ़ेदी है सो बसलमें कालापन और सफ़ेदी नहीं है बल्कि ज़हर और अमृत है । अगर उसकी आंखोंमें ज़हर और अमृत नहीं है तो उनके देखते ही क्यों नवयुवक लोग एक साथ ही मतवाले भी हो जाते हैं और आनन्दमें भी मर जाते हैं । अर्थात् उसकी आंखोंमें जो कालापन है वह ज़हर है जिसके असर से युवकगण मदमत्त हो जाते हैं और उसकी आंखोंमें जो सफ़ेदी है वह अमृत है जिसका असर पड़ते ही वे लोग आनन्द लहरी में गोता लगाने लगते हैं । इस श्लोकका भाव नीचे लिखे हुए दोहे से लिया गया है, पर दोहेका भाव इस श्लोक के भावसे कहीं ऊंचा है ।

अमी हलाहल मद भरे स्वेत श्याम रतनार ।

जियत, भरत, झुकि झुकि परत जेहि चित्तयत एक वार ॥

सन्ध्याकाल और चन्द्रवर्णन ।

चन्द्रमा में जो फलंक है उस पर किसी कवि ने कल्पना की

है :—

अंक के ऽपि शशकिरे, जलनिधेः पंकं परे मेनिरे

सारंगं कतिचिश्च संजगदिरे, भूमेश्च विवं परे ।

इन्दी यहलितेन्द्रनीलशकलश्यामं दूरीदृश्यते

तन्मन्ये रविभीतमन्धतमसं कुक्षिस्थमालक्ष्यते ॥ ५९ ॥

५६ भावार्थ :—चन्द्रमा में जाँ यह काला धब्बा है उसे कोई कलंक समझते हैं ; कोई यह समझते हैं कि चन्द्रमा समुद्र से मथ कर निकाला गया है अतएव यह काला धब्बा समुद्रका कीचड़ है जो उसमें लगा रह गया है ; कोई उसे मृग समझते हैं इसी से चन्द्रमा मृगलाञ्छन कहा जाता है ; और कोई चन्द्रमा पर पड़ा हुआ पृथ्वीका प्रतिबिम्ब उसे मानते हैं । पर मैं तो यह समझता हूँ कि चन्द्रमा में जो यह नीलम के टुकड़े के समान काला दाग दिखलाई पड़ता है वह अन्धकार है जो सूर्य से डरकर चन्द्रमा की गोदमें शरण लेकर बैठा हुआ है ।

किसी कवि ने नीचे लिखे हुए श्लोक में सायंकाल का वर्णन करते हुए अच्छा “समासोक्ति” अलंकार बाँधा है । इसमें चन्द्रमा नायक और रजनी नायिका दिखलाई गई है :—

अंगुलीभिरिव केशसंचयं संनिगृह्य तिमिरं मरीचिभिः ।

कुङ्मलीकृतसरोजलोचनं चुम्बतीव रजनीमुखं शशी ॥६०॥

६० भावार्थ :—चन्द्रमा अपनी किरणरूपी अङ्गुलियों से अन्धकार रूपी केशों के समूह को पकड़ कर निशारूपी नायिका के मुख (सन्ध्याकाल) को चुम्बन कर रहा है । सूर्यास्त हो जाने पर मुद्दि हुए कमल इस नायिका के मुद्दि हुए नेत्र हैं । चन्द्रमा नायक है, निशा नायिका है, अन्धकार समूह उस नायिका के घाल हैं, किरणें उस नायक की अङ्गुलियाँ हैं जिनसे वह नायिका के बालोंको पकड़ रहा है, मुद्दित कमल उस नायिका के प्रेम में

मुँदे हुए नेत्र हैं, और सन्ध्याकाल (रजनीमुष) उस नायिका का मुँह है ।

सन्ध्याकाल में उदय होते हुए चन्द्रमा पर किसी कवि की अच्छी सूझ है । यह श्लोक काव्यप्रकार में “अस्मानक्षसमास” नामक दोष के उदाहरण में दिया गया है ।

“अथापि स्तनशैलदुर्गत्रियमे सीमन्तिनीनां हृदि
स्यातुं वाञ्छति मान एष धिगिति !” क्रोधादिवालोहितः ।
प्रोद्यद्दूरतरङ्गसारितकरःकर्पत्पसी तत्क्षणात्
फुल्लकैरयकोपनिःसखलित्रेणीकृपाणं शशी ॥ ६१ ॥

६१ भावार्थः—“मानवती स्त्रियोंके हृदयमें, जो स्तनरूपी पहाड़ी किलोंसे सुरक्षित है, मान अब भी रहना चाहता है, धिक्कार ! है उसे” ऐसा खयाल कर चन्द्रमा क्रोधके मारे लाल हो गया, और उसी समय दूर दूर तक फैले हुए किरण रूपी हाथोंसे फूली हुई कुईकी फलियोंसे निकलती हुई भ्रमर पंक्ति रूपी तलवारको सहसा खींच रहा है कि मान को इस अपनी तलवारके जोरसे परास्त करें । सन्ध्याकाल के बाद चन्द्रमा के उदय होने पर बड़ी से बड़ी मानवती स्त्रियोंका भी मान दूर हो जाता है इस बात को कविने कौसी सूनी के साथ दिखलाया है ।

अस्ताचल को जाते हुए सूर्य को देख एक कवि कहता हैः—

अयं मन्दद्युतिर्मासानस्तं प्रति यियासति ।
उदयः पतनायेति श्रीमनो बोधयन् नरान् ॥ ६२ ॥

६२ भावार्थः—सायंकाल में प्रकाश रहित और तेजोहीन हो

संस्कृत कवियोंकी अनोखी सुझ ।

र सूर्य, धनवान् मनुष्यों को यह बतलाता हुआ धीरे धीरे अस्त
रहा है कि “जिसका एक बार उदय हुआ है उसका अस्त
। अवश्य होगा ।”

सन्ध्या समय अस्ताचलको जाते हुए सूर्यको देखकर एक
वि कहता है :—

कोऽत्र भूमिवलये जनान्मुधा
तापयन्सुचिरमेति सपदः ।
वेदयन्निति दिनेन भानुमा—
नाससाद् चरमाचल तत ॥ ६३ ॥

६३ भावार्थ :—“इस पृथ्वीमण्डल पर कौन ऐसा है जो
रथ लोगोंको संताप पहुँचा कर भी चिरकाल तक उच्च
ना रहे और संपत्तिका भोग करता रहे”—इस बातको मानो
तलाता हुआ सूर्य ससारको तपा कर दिन भरके बाद ही
स्ताचलको प्राप्त हो रहा है ।

सायंकालको समुद्रमें डूबते हुए सूर्यको देखकर किसी
विने एक अनोखी कल्पना की है :—

श्रुत्या प्रमुद्गकमलामखिलां त्रिलोकी—
मंभोनिधेर्त्रिंशति गर्भमसाविदानीम् ।
अन्त प्रसुतहरि नाभिसरोजयौध—
पीतृहलीव भगवानरविन्द यन्धु ॥ ६४ ॥

६४ भावार्थ :—तीनों लोकोंके सब कमलोंको विकसित
रके अरविन्द यन्धु (कमलोंके मित्र) सूर्य भगवान् अब क्षीर-

सागरमें सोते हुए विष्णु भगवान्‌के नामसे उगे हुए कमलकी विकासित करनेके लिये समुद्रके गर्भमें लीन हो रहे हैं ।

इस श्लोकमें किसी कविने प्रभातका बहुत ही प्राकृतिक वर्णन किया है :—

अभूत्प्राची विंगा रसपतिरिव प्राश्य कनकं
क्षणरक्षीणा तारा नृपतय इयानुद्यमभृतः ।
गतच्छायश्चन्द्रो बुधजन इव प्राभ्यसदसि
न राजन्ते दीपा द्रविण रहिता नामिव गुणाः ॥ ६५ ॥

६५ भावार्थ :—सोना पी लेनेके बाद फारा जैसे तपाए हुए सोनेकी भांति चमकने लगता है उसी तरह पूर्व दिशा भी सूर्यकी लालीसे तपाए हुए सोनेकी तरह चमक रही है । आलसी राजाओंकी तरह तारे भी क्षणभरमें क्षीण होकर लोप हो गये । जिस तरहसे गंवारोंके पीचमें बुद्धिमानोंकी श्रौ हत हो जाती है उसी तरह चन्द्रमा भी प्रभातकालमें श्रोहत होकर अस्त हो रहा है । दीप जैसे ही शोभा नहीं देते जैसे धनहीन—वे कौड़ी पैसे वाले मनुष्यके गुण शोभा नहीं देते ।

चन्द्रमा में जो यह काला धब्बा है वह क्या है इस पर किसी कवि ने इस श्लोक में अनोखी कल्पना की है । यह श्लोक काव्य प्रकाशमें अपह्नुति अलंकार के उदाहरण में दिया गया है ।

अश्राप्तः प्रागल्भ्यं परिणतस्त्वः शैलतनये !
कलंको नेत्रायं विलसति शशांकस्य वपुषि ।
अमुष्यैर्यं मन्ये विगलदमृतस्यन्दशिशिरे
रतिभ्रान्ता शेते रजनिरमणी गाढमुरसि ॥ ६६ ॥

६६ भावार्थः—शिव पार्वतीसे कहते हैं:—“हे शैलतनये, यह जो पूर्णमासीके चान्द में बड़ा सा काला धब्बा दिखलाई पड़ता है वह कलक नहीं है । तो फिर है क्या ? निशा रूपी नायिका रति से खिन्न होकर अपने प्रियतम की गोद में, जो अमृत के प्रवाह से शीतल हो रही है, गाढ़ निद्रामें सो रही है ।”

चन्द्रमा पर किसी कविने कल्पना की है :—

इद व्योमसरोमध्यं भाति चन्द्रसितोत्पलम् ।

मलिनोऽन्तर्गतो पत्र कलंको भ्रमरायते ॥ ६७ ॥

६७ भावार्थः—आकाश रूपी तालाबके बीच में यह चन्द्रमा एक सफेद कमल है, जिस पर कलंक भौंरे के समान शोभा दे रहा है ।

चन्द्रमा की किरणों का नीचे के श्लोक में बड़ा अच्छा वर्णन है । यह श्लोक फाव्यप्रकाश में भ्रान्तिमान् अलंकार के उदाहरण में आया है :—

कपाले मार्जारः पय इति क्वांल्लेदि शशिन—

स्तस्यच्छिद्रप्रोतान् विसमिति करी संकलयति ।

रतान्ते तल्पस्यान्धरति यनिताप्यंसुकमिति

प्रभामत्तश्चन्द्रो जगदिदमहो ! विभ्रमयति ॥ ६८ ॥

६८ भावार्थः—कटोरे पर पड़ती हुई चन्द्रमा की किरणों को दिलार यह समझ कर कि दूध है जीम से घाट रहा है । पेड़ के पत्तों से छनती हुई किरणों को हाथी यह समझ कर कि कमल की नाल है सूड़ से उपाड़ रहा है । रति के अन्त में पलंग पर

।ड़ती हुई चन्द्रमा को किरणों को खी यह समझ कर कि साड़ी है पलंग पर से उसे उठाने के लिये हाथ फेर रही है । प्रमा के मद में मतवाला हो कर चन्द्रमा समस्त जगत को भ्रम में डाल रहा है ।

किसी कवि ने रात के वर्णन में कापाली का अच्छा रूपक बांधा है:—

ज्योत्स्नाभस्मच्छुरणधवला विभ्रती तारकासो—

न्यन्तर्धानव्यसनरसिका रात्रिकापालिकीयम् ।

द्वीपादुद्वीपं भ्रमति दधती चन्द्रमुद्राकपाले

न्यस्तं सिद्धांजनपरिमलं लाञ्छनस्यच्छलेन ॥६६॥

६६ भावार्थ:—रात्रि एक कापाली है । यह चान्दनी रूपी भस्म को रमाए हुए, तारा रूपी अक्षियों को धारण किये हुए, चन्द्रमा रूपी खप्पर में कलंक रूपी भ्रमूत को रक्खे हुए, एक द्वीपसे दूसरे द्वीप में भ्रमण कर रही है । जैसे कापाली अन्तर्धान हो जाती है उसी तरह यह भी दिन में छिप जाया करती है ।

किसी ने पूर्णिमा की रात्रि तथा चन्द्रमा का अच्छा वर्णन किया है । यह श्लोक साहित्य दर्पण में अपह्नुति अलंकार के उदाहरण में दिया गया है:—

नेहं नमोमण्डलमम्युरशिर्निताश्च तारा नवफेनमंगाः ।

नायं शशी कुण्डलितः फणीन्द्रो नासौ कलंकःशयितो मुरारिः॥७०॥

७० भावार्थ:—यह आकाश नहीं बल्कि क्षीरसमुद्र है, ये तारे नहीं बल्कि समुद्र के फेन हैं, यह चन्द्रमा नहीं बल्कि गोड़िरी

मारे शेष नाग है, और यह कलंक नहीं बल्कि विष्णु भगवान् शेषशय्या पर सो रहे हैं ।

चन्द्रमा में जो यह काला धब्बा है वह क्या है ? इसपर एक कवि कहता है :—

पीतमेतदलिवृन्दमेचकं ध्वान्तमेव सकलं हिमत्विषा ।

स्वच्छविग्रहतया शशांकतेः छद्मना बहिरिद्यस्य लक्ष्यते ॥७१॥

७१ भावार्थ.—चन्द्रमा ने उदय होते ही भौरों के समान काले अन्धकार को विलकुल पी लिया । वही अन्धकार, चन्द्रमा का शरीर अत्यन्त स्वच्छ होने से, शशांक के रूप में बाहर झलक रहा है ।

रात्रि के अन्धकार में घर घर में दीपक का प्रकाश कैसा शोभायमान होता है । उसी का वर्णन किसी ने बहुत अच्छा किया है :—

महद्विरोघैस्तमसामभिद्रुतो भयेऽप्यसंमूढमतिर्भ्रमनुक्षितौ ।

प्रदीपंपेण गृहे गृहे स्थितौ विखड्य देहं बहुधेव भास्करः ॥७२॥

७२ भावार्थ.—यद्यपि सूर्य अन्धकार के समूह से छिन्न भिन्न किया गया तथापि वह धरड़ाया नहीं, बल्कि उसने अपना अस्तित्व कायम रखनेकी दूसरी तरकीब निकाली । दिन में वह केवल एक धा, अब वह अपने शरीर के बहुत से टुकड़े कर प्रदीप तथा लैम्प के पेश में घर घर में विराजमान है ।

चन्द्रमाके बारे में किसी कवि ने बहुत ही अनोपी कल्पनाय की है :—

लक्ष्मीक्रीडातडागो, रतिघवलगृहं, दर्पणो दिग्वधूनां,
पुष्पं श्यामालतायास्त्रिभुवनजयिनो मन्मथस्यातपत्रम् ।
पिएडीभूतं हरस्य स्मितममरसरित्पुण्डरीकं, मृगाको,
ज्योत्स्नापीयूषघापी, जयति सितवृषस्तारकागोमुलस्य ॥७३॥

७३ भावार्थ :—यह चन्द्रमा लक्ष्मीदेवी का क्रीडासर है, कामदेवकी स्त्री रति का सफेद घर है, दिशारूपी घघूटियों के मुख देखने का दर्पण है, रात्रि रूपी लता का सफेद फूल है, त्रिभुवन विजयी कामदेव का यह श्वेतछत्र है। अथवा महादेवजी ने अट्टहास किया है वही हास्य पिएडीभूत होकर चन्द्रमा हो गया है। अथवा आकाश गंगा मन्दाकिनी में पिला हुआ यह कमल का फूल है। या चान्दनीरूपी अमृत का यह सरोवर है। अथवा तारारूपी गीओं के बीच में यह एक सफेद घैल है।

सन्ध्याकाल के वर्णन में किसी कवि ने इस श्लोक में अच्छी अच्छी उपमाएं दी हैं :—

मसनिन इव विद्या क्षीयते पङ्कजधी.
गुणिन इव कुदेशे दैन्यमायान्ति भृङ्गा ।
कुनृपतिरिव लोकान् पीडयत्यन्धकारे
धनमिव कृपणाता व्यर्थतां याति चक्षुः ॥ ७४ ॥

७४ भावार्थ :—सन्ध्या समय कमलों की शोभा वैसी ही क्षीण हो रही है जैसी कि दुर्व्यसन में पड़े हुए विद्यार्थियों की विद्या क्षीण हो जाती है। कमलों के मुंद जाने से भरे वैसे ही दुर्गति को प्राप्त हो रहे हैं, जैसे किसी खराब देश में पहुंच कर गुणों की कदर न होने से कोई गुणी मनुष्य दुःख पाता है।

अन्धकार मनुष्यों को वैसे ही पीड़ा दे रहा है जैसे दुष्ट अत्याचारी राजा अपनी प्रजाको पीड़ा देता है । अन्धकार के कारण आँखें बैसे ही व्यर्थ हो रही हैं जैसे सूमका धन, जो न दिया जाता है न मोगा जाता है, व्यर्थ है ।

इस श्लोकमें सन्ध्याका वर्णन करते हुए किसी कविते नाटक का सर्वांगपूर्ण रूपक बड़ी खूबोके साथ बांधा है :—

सन्ध्याशोणाम्बरजवनिका, कामिनोः प्रेमनाट्यं,
नान्दी भ्राम्यद्भ्रमरविरतं, मारिषः फोडपि कालः ।

तारापुष्पांजलिमिव किरण, सूचयन् पुष्पकेतो

नृत्यारम्भं, प्रविशति सुधादीधितिः सूत्रधारः ॥ ७५ ॥

७५ भावार्थ :—सन्ध्याकालीन लाल आकाश इस नाटकका पर्दा है, कामी पुण्य और स्त्रियोंका प्रेम इस नाटकका प्लॉट (कथानक) है, इधर उधर उड़ते हुए भौरोंका भन्न भन्न शब्द इस नाटकका नान्दी पाठ है, फोर्ड ऐसा अलौकिक सन्ध्याकाल जो है वही मारिष (सहायक सूत्रधार) है, और चन्द्रमा ही इस नाटकका सूत्रधार है, जो तारारूपी पुष्पोंको बिखेरता हुआ, और इस यातको सूचित करता हुआ कि अब कामदेवका नृत्य आरंभ होनेवाला है, आकाश रूपी स्टेज (रंगमंच) पर देखिये प्रवेश कर रहा है ।

ऋतु वर्णन ।

इस श्लोकमें भीष्म ऋतुका बहुत प्राकृतिक वर्णन है :—

तता मही विरहिणामिय चित्त वृत्ति—

रन्ध्याध्यगेषु कृपणोप्यिय वृद्धिमेति ।

सूर्यः करैर्दहति दुर्वचनैः खलौनु

छाया सतीव न च मुच्यति पादमूलम् ॥ ७६ ॥

७६ भावार्थः—पृथ्वी वैसी ही तप रही है जिस तरहसे वियोगी प्रेमियोंका हृदय वियोगसे जला करता है । बटोहियोंमें प्यास वैसी ही बढ़ रही है, जिस तरहसे क्षण मनुष्योंमें धनकी वृष्ण दिन पर दिन बढ़ती जाती है । सूर्य अपनी किरणोंसे जगत्को वैसी ही पीड़ा दे रहा है जैसे दुष्ट मनुष्य अपने वाग्वाणोंसे लोगोंको पीड़ा दिया करता है । छाया सती और पतिव्रता स्त्रीके समान वृक्षकी जड़को नहीं छोड़ती ।

ग्रीष्म ऋतुकी दोपहरका वर्णन किसीने इस श्लोकमें अच्छा किया है :—

दुःसहतापभयादिय संप्रति मध्यस्थिते दिवसनाथे ।

छायामिव वाञ्छन्ती छायापि गता तरुतलानि ॥७७॥

७७ भावार्थः—दोपहरमें सूर्यके ठीक मध्य आकाशमें आने पर, असहनीय तापके भयसे, छाया भी छायाकी इच्छासे वृक्षके नीचे चली गई । दोपहरको चारह बजे छाया सिकुड़ती सिकुड़ती ठीक वृक्षके नीचे आजाती है, इसी बातको इस श्लोकमें कविने कितनी सुन्दरतासे कहा है ।

इसी भावका विहारीका यह दोहा भी है :—

बैठि रही अति सघन बन, पैठि सदन मन मांहि ।

निरसि दुपहरी जेठकी, धांहीं चाहत छाहि ॥

इस श्लोकमें भी ग्रीष्म ऋतु की दोपहरका वर्णन अच्छा है :—

परपुरुषादिव सवितुः संप्रति भीताः करग्रसंस्पर्शात् ।

कुलवध्य इव सलज्जाः प्रविशन्ति गृहोदरं छायाः ॥ ७८ ॥

७८ भावार्थः—सूर्य की किरणें कहीं मुझे स्पर्श न करलें
 वस इसी डरसे गर्मीमें छाया घरके भीतर घुसकर बैठी है ।
 जैसे कोई लज्जाशीला कुलकामिनी परपुरुषके करस्पर्शसे डरती
 हुई घरके भीतर घुस जाती है ।

वर्षा कालकी रातका वर्णन किसीने बहुत अच्छा किया
 है:—

क्षया क्षामीकृत्य प्रसभमप हृत्याम्बु सरितां ।

प्रताप्योर्चो हृत्स्नां तरुगहनमुच्छ्रोप्य सकलम् ॥

फ संप्रत्युष्णाशुर्गत इति तदन्वेषणपरां !

स्तडिहीपालोका दिशि दिशि चरन्तीह जलदाः ॥ ७९ ॥

७९ भावार्थः—रात्रिको दुर्बल और क्लेशित कर, नदियों के
 जलको घल पूर्वक अपहरण कर, समस्त पृथ्वीको तपा कर,
 और जितने वन और उपवन हैं उनको सुखा कर अत्याचारी
 और निर्दयी सूर्य अब कहां छिप कर बैठा है वस उसीको ढूंढ-
 ने के लिये हाथमें बिजुली रूपी क्षीपक लेकर मेघ एक दिशासे
 दूसरी दिशामें घूम रहे हैं ।

वर्षाकालका वर्णन इस श्लोकमें बहुत ही सुन्दर किसीने
 किया है:—

खं चस्ते फलचिंकरणठरुचिर कादग्निनीरुग्धल

घर्षां पारयतीव द्दुर्खुलं फोलाहलैरुन्मदम् ॥

गन्धं मुञ्चति सिक्कलाजसदृशं वर्षेण दग्धा स्थली ।
दुर्लभ्योऽपि विभाव्यते कमलिनीहासेन भासां निधिः ॥८०॥

८० भावार्थ—गौरैयाके कण्ठके समान काले मेघ आकाश में छाये हुए हैं, मानों आकाश रूपी फर्श पर काला गलीचा बिछा दिया गया हो; मेढ़क लोग टर्टर लगाए हुए हैं, मानों वेदपाठी छात्र वेदपाठ कर रहे हों; ग्रीष्मतता पृथ्वी वर्षाकी वृन्दोंसे सिक्क होकर बँसीही सुगन्ध छोड़ रही है जैसी सुगन्ध धानके छायाके घोंमें भूजनेसे उठती है; यद्यपि सूर्य दृष्टिमें नहीं आता तब भी कमलोंके विकाशसे उसके अस्तित्वका अनुमान किया जा सकता है ।

वर्षा कालकी रातका वर्णन इस श्लोकमें बहुतही भई सूक्ष्म का है :—

निरीक्ष्य विशुन्नपनैः पयोदो ।
मुखं निशायामभिसारिकायाः ॥
धारानिपातं सह किं नु यान्त
अन्दोयमित्यार्त्ततरं ररास ॥८१॥

८१ भावार्थ—वर्षा कालकी अंधेरी रातमें अभिसारिका नायिका अपने यारके घर जा रही है । उसके मुखको विजुली रूपी नेत्रोंसे देख बादलोंको भ्रम होता है कि निरन्तरकी धारापात में चन्द्रमा आकाशसे पृथिवी पर गिर गया क्या ? हाय राज्ञ्य हुआ ! इसी सोचमें भर वे बड़ी जोरसे चिल्लाने लगते हैं । यह गरजनेका शब्द उन्हीं बादलोंका चोंक कर चिल्लाना है ।

हेमन्त ऋतुके दिनोंके वर्णनमें किसीने बड़ी अच्छी उपमाएं दी हैं:—

लज्जा प्रौढमृगीदृशामिव, नवस्त्रीणां रतेच्छा इव ।
स्वैरिण्या नियमा इव, स्मितरुचः कुल्यांगनानामिव ॥
दम्पत्योः कलहा इव, प्राणयिता वारांगनानामिव ।
प्रादुर्भूय तिरोभवन्ति सहसा हेमन्तिका वासराः॥८२॥

८२ भावार्थ:—प्रौढ़ा स्त्रियोंकी लज्जाके समान, नवयुवतियोंकी सुरतेच्छाके समान, यथेच्छाचारिणी स्त्रियोंके शील और नियमके समान, कुलीन स्त्रियोंकी मुस्कुराहटके समान, पति और पत्नीके परस्पर प्रेम-कलहके समान तथा वेश्याओंकी प्रीतिके समान हेमन्त ऋतुमें दिन आते हैं और फिर शीघ्रही विलीन भी हो जाते हैं ।

शरत्कालके वर्णनमें किसी कविने इस श्लोकमें भी अच्छी उपमाएं दी हैं:—

बृद्धांगनेव विजहौ सरिदुद्धत्वम् ।
वेदान्तिनामिव मतं शुचि नीरमासीत् ॥
चन्द्रप्रभा युवतिवक्रमिवाद्भुताभूत् ।
ग्राह्यण्यदैन्यमिव केकिरुतं न रेजे ॥८३॥

८३ भावार्थ:—शरत् कालमें नदियोंका जोम वैसाही दूट गया जैसे बुढ़ापेमें स्त्रियोंका जोम दूट जाता है, जल वैसाही साफ हो गया जैसे वेदान्तियोंका सिद्धान्त स्वच्छ और विमल होता है, चन्द्रमाका प्रकाश वैसाही निर्मल और शोभा युक्त है जैसे सुन्दर युवतियोंका मुखारविन्द होता है और मोरोंका

किकियाना वैसाही कर्ण कटु हो रहा है जैसी ग्राहणोंकी क्षीन वाणी तथा शोकोद्गार कानोंको प्रिय नहीं लगता ।

शिशिर ऋतुकी ठंडी हवा चिरहिणी स्त्रियोंको कैसी दुःख दायी होती है और उससे उनको कितनी कामपीड़ा होती है इसीका वर्णन किसी कविने अच्छे ढंगसे किया है :—

शिशिरसीकरवाहिनि मारुते चरति शीतभयादिव सत्वरः ।

मनसिजः प्रविवेश वियोगिनीहृदयमोहित शोक हुताशनम् ॥८४॥

८४ भावार्थ :—शिशिरकालमें ठंडी हवा चलनेपर शीतसे बचनेके लिये कामदेवने वियोगिनी स्त्रियोंके हृदयोंमें, जिनमें विरहान्नि घघक रही है, प्रवेश किया ।

किसी कविने जाड़ेका बहुत ही प्राकृतिक वर्णन किया है :—

विभीषयति शीतल जल महिर्यपुष्मानिव

प्रलोभयति कामिनीस्तन इवास्तधूमानलः ।

सुताप्तय इव त्विषो दिनमणोः सुखं कुर्वते

कुटुम्ब कटुवागिव व्यथयते तुपापानिलः । ८५

८५ भावार्थ :—ठंडा जल साक्षात् सर्पकी तरह डरावना मालूम पड़ता है । जिसमेंसे घुंआ नहीं उड़ता ऐसी आग कामिनीके स्तनके समान देखनेवालोंको अपनी ओर खींच रही है । सूरजका घाम पुत्रजन्मकी तरह सुख पहुंचा रहा है । ठंडी ठंडी हवा शरीरमें वैसी ही लगती है जैसी अपने कुटुम्ब-वालोंकी कटुई यातों हृदयमें लगती हैं ।

जाड़ेका वर्णन करता हुआ कोई कवि किसी धनी मनुष्य या राजासे कहता है :—

शीतार्त्ता इव संकुचन्ति दिवसाः नैवाम्बरं शर्धरी
 शीघ्र मुचति, पश्य देव ! हुतभुक्कोणं गतो भास्करः ।
 त्वं चानङ्ग हुताशभाजि हृदये सीमन्तिनीनां स्थितौ
 नास्माकं वसनं नवा युवतयो ब्रूहि क्व यामो वयम् ॥ ८६

८६ भावार्थ :—हे राजन् ! आजकल दिन भी सर्दोंके मारे
 ठिठुर कर छोटे हो गये हैं, रात भी जाड़ेके मारे जल्दी अम्बर
 (आकाश अथवा कपड़ा या रज़ाई) को नहीं छोड़ती, सूर्य भी
 आग तापनेके लिये अग्निकोणको चला गया, आप भी उन कामि-
 नियोंके हृदयमें सदा निवास करते हैं जिनका हृदय हमेशा
 कामाग्निसे जला करता है । हमारे पास न तो कपड़ा और न
 युवतियां हैं । घतलाइये ऐसे जाड़ेमें हम क्या करें ।

वसन्त कालके वर्षानमें किसी कविने बड़ा अनोखा रूपक
 बांधा है :—

जगद्विजयरूपके पठति सूत्रधारे मधा—
 वति प्रमदकोकिला फलफलच्छलान्मंगलम् ।
 द्यं जवनिकां हरन् मृगदृशां मनोरंगत—
 स्ततः प्रविशति स्वयं कुसुमसायको नायकः ॥ ८७

८७ भावार्थ :—“जगद्विजय” नामके नाटकके प्रारंभमें वस-
 न्तरूपी सूत्रधार जय मदमें मतवाली कोकिलाओंकी फूकरूपी
 नान्दीका पाठ कर चुका तब मृगनयनिओंके मन रूपी रंगमंच
 (स्टेज) से मानरूपी जवनिकाको हटाता हुआ कामदेव रूपी
 नायक प्रवेश करता है ।

यश और राजस्तुति

किसी राजाकी तारीफमें एक कवि कहता है :—

देव त्वयशसि प्रसर्पति जगत्सुश्रुमोसुश्रोर्ध्वं श्रव—

श्चन्द्रं रावणकौस्तुभाः स्थितिमिनामगन्तु दुग्धाम्बुधी ।

किन्त्वैकः पुनरस्ति दूपणकणो यज्ञोपयाति त्रमा—

कृष्णं श्रीः, शितिकण्ठमद्रितनया, नीलाम्बरं रोहिणी ॥८८॥

८८ भावार्थ :—हे राजन्, आपका यश जगत् में फैलते ही

लक्ष्मी, सुधा, उर्ध्वः श्रवा, चन्द्रमर, रेखावत हाथी, कौस्तुभमणि इत्यादि जितने पदार्थ समुद्र-मन्थन से निकले थे सब के सब फिर से अपना वास क्षीर समुद्र में भ्रमरने लगे । लेकिन एक बात ज़रा दोष की है,—बह यह कि समस्तवस्तु के श्रेत हो जानेसे लक्ष्मी भ्रमसे कृष्णके पास, पार्वतीजी शितिकण्ठ महादेवके पास, और रोहिणी नीलवस्त्रधारी बलदेवके पास नहीं जातीं, क्योंकि आपके यशके प्रतापसे कृष्णका शरीर, महादेवका कण्ठ और बलदेवका नीला वस्त्र सब का सब सफेद हो गया । इसीसे लक्ष्मी इत्यादिको कृष्ण इत्यादिके चारों भ्रम हो रहा है ।

किसी राजाकी तारीफमें एक कवि कहता है :—

यथा यथा ते सुयशो विवर्द्धते सिता त्रिलोकीमिव कर्तुमुद्यतम् ।

तथा तथा मे हृदय चिदूयते प्रियालकालीचवलत्वशक्या ॥८९॥

८९ भावार्थ :—राजन्, तीनों लोकोंको सफेद करता हुआ आपका यश ज्यों ज्यों फैल रहा है त्यों त्यों मेरे हृदयमें शरणा बढती जाती है कि कहीं मेरी प्रियाकी अलकावली भी सफेद न हो जाय । संस्कृत कवियोंने यशका वर्णन श्वेत किया है ।

लक्ष्मी और सरस्वती ।

किसी राजाको आशीर्वाद देता हुआ एक कवि कहता है—

हिमशिशिरवसन्तग्रीष्मवर्षाशरत्सु ।

स्तनतपनवनाभौहर्म्यगोक्षोरपाने ॥

सुखमनुभव राजन् ! शत्रवो यान्तु नाशं ।

दिवसकमललज्जाशर्वरीरेणुपकै ॥६०॥

६० भावार्थ—हे राजन् ! हेमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, तथा शरत् इन छहों ऋतुओंमें आप क्रमसे (१) स्त्रियों के स्तन (२) सूर्यका घाम, (३) वन तथा घाग (४) नदी तथा तालाबका जल, (५) ऊँचे ऊँचे महल तथा दुमहले, (६) और शीका दुग्धपान इनसे ऋतुओंके अनुसार सुख अनुभव करें । और आपके शत्रु यथाक्रम, (१) दिन, (२) कमल, (३) लज्जा, (४) रात, (५) धूल तथा (६) कीचटके साथ साथ, ऋतुओं के अनुसार नाशको प्राप्त हों ।

किमी धनीके द्वारसे दुरदुराया गया कोई निष्किचन सरस्वतीका भक्त कहता है—

“निद्राति, स्नाति, भुंक्तौ, चलति, कंचमर शोषयत्यन्तरास्ते ।

दीप्यत्यक्षैर्न चार्थं गदितुमयसरो, भूय आयाहि याहि ॥”

इत्युद्दण्डः प्रभूणामसहृदधिरुतैर्वास्तितान् द्वारि दीना—

नरमान् पश्यान्ध्रकन्ये ! सरसिरुहरन्वामन्तरापराम् ॥६१॥

६१ भावार्थ—“सरकार अभी सो रहे हैं, अथ छान कर रहे हैं, अभी पा रहे हैं, अभी चेहलफदमी घर रहे हैं, अथ बालोंको सुगा रहे हैं, इन भक्त ज्ञानान्णानेमें तशरीफ रखते हैं, अभी

पासा खेल रहे हैं, यह समय बोलनेका नहीं है, अभी जाओ, फिर आना"—इस तरहसे बारबार उद्धत, तथा धनके मदमें मतवाले अमीरों के द्वार पर अधिकारी पुरखोंसे रोके गये हम को भी, हे लक्ष्मी ! अपनी कृपाकटाक्षसे एक बार देख लो तो हम निहाल हो जायें ।

मूर्खके पास लक्ष्मी क्यों आती है और विद्वान्के पास क्यों नहीं आती, इस पर किसीने बहुत अच्छा कहा है:—

पद्मे ! भूढ जने ददासि द्रविणं विद्वत्सु किं मत्सरो ?

नाहं मत्सरिणी, न चापि चपला, नैवासि मूर्खे रता ॥

मूर्खेभ्यो द्रविणं ददामि नितरां तत्कारणं श्रुयताम् ।

विद्वान्सर्वजनेषु पूजिततनुर्मूर्खस्य नान्या गतिः ॥१२॥

१२ भाषार्थ.—“लक्ष्मी ! तुम मूर्खोंको धन देती हो, विद्वानों से तुम्हारा इतना क्यों द्वेष है ?” इसपर लक्ष्मी उत्तर देती है:—

“न तो मैं किसीसे द्वेष करती हूँ, न मैं चंचला हूँ जैसा लोग मुझे समझते हैं, और न मूर्खोंसे मेरा कोई प्रेम है । मूर्खोंको जो मैं धन देती हूँ इसका कारण सुनो, विद्वान् पुरुष तो सब जगह पूजा जाता है, मूर्खकी तो सिवा मेरे कोई गतिही नहीं है । इसीसे मैं उन्हें धन-दिया करती हूँ । यदि मैं भी उन्हें छोड़ दूँ तो उनका ठिकाना कहां लगे ।”

लक्ष्मी चंचला है ऐसा लोग कहा करते हैं इस पर एक कवि कहता है:—

यद्भ्रान्ति चपलेत्यपरादं नैव दूषणमिदं कमलायाः ।

दूषणं जननिषेहि भवेत्तद्यत्पुराणपुरुषाय ददी ताम् ॥१३॥

६३ भावार्थ :—लोग यह कहा करते हैं कि लक्ष्मी बड़ी चंचला है, एक जगह स्थिर हो कर नहीं रहती ; आज एक के पास है तो कल दूसरे के पास, इसमें भला लक्ष्मीका क्या दोष ? दोष तो लक्ष्मी के पिता समुद्र का है, जिसने उसे एक पुराण पुरुष (वृद्धमनुष्य तथा विष्णु) से व्याह दिया । इसी भाव का रहीम का एक दोहा भी है :—

चपला यह न रहीम थिर सांच कहत सब लोय ।

पुरुष पुरातन की बधू बर्यो न चंचला होय ॥

लक्ष्मी और सरस्वती का झगड़ा इस श्लोकमें किसीने बहुत अच्छा दिखलाया है :—

विद्वांसः कृतबुद्धयः सखि ! मम द्वारि स्थिताः नित्यशः ।

श्रीमन्तोऽपि मया विना पशुसमा तस्माद्दहं श्रेयसी ॥

श्रीवाग्देवतयोरमूनि वचनान्याकर्ण्य वेधाश्चिर-

दूचे श्रेयतरे उमे यदि भवेदेको विवेको गुणः ॥६४॥

६४ भावार्थ :—लक्ष्मी कहती है :—“सखी सरस्वती, बड़े बड़े विद्वान् और बुद्धिमान् नित्य मेरे (धनियोंके) द्वारपर हाथ फैलाए पड़े रहते हैं ।” इस पर सरस्वती उत्तर देती है :—“हां ठीक है, किन्तु धनी मनुष्य भी, मेरे (सरस्वतीके) बिना निरे पशु हैं, इस लिये मैं ही बड़ी हूँ ।” लक्ष्मी और सरस्वती के इस झगड़ेको सुनकर प्रह्ला यहूत देरतक सोचने के बाद बोले :—“दोनों ही अच्छी हैं यदि दोनोंमें विवेक हो तो, बिना विवेक के दोनों में से एक भी प्रशंसा के योग्य नहीं है ।”

किसीके सामने हाथ फैलानेसे अपनी प्रतिष्ठाकी कितनी हानि होती है, इस पर एक कवि अच्छा कहता है —

स्वार्थं धनानि धनिकात्प्रतिगृह्यतो यद्
 व्यास्य भजेन्मलिनतां किमिद् विचित्रम् ।
 गृह्यन् परार्थमपि वारिनिधेः पयोऽपि
 मेघोऽयमेति सकलोऽपि च कालिमानम् ॥ ६५ ॥

६५ भावार्थ — किसी धनीसे अपने स्वार्थके लिये धन लेते हुए यदि मनुष्यका चेहरा मलिन हो जाय तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं । मेघ तो समुद्रसे केवल जल और वह भी दूसरोंके लिये लेता है, और केवल इतने ही से वह पूरी तरहसे काला हो जाता है ।

लक्ष्मी और हालाहल विषमें तुलना करता हुआ कोई कवि कहता है —

हालाहलं नैव विष, विषं रमा,
 जना. परं व्यत्ययमत्र मन्वते ।
 निपीय जागर्ति सुखेन स शिव
 स्पृशन्निमा मुह्यति निद्रया हरिः ॥ ६६ ॥

६६ भावार्थ — लोगोंका गलत कथनाल है कि हालाहल विष है । मैं तो यह समझता हू कि हालाहल विष नहीं है बल्कि लक्ष्मी विष है । क्योंकि उसे पीकर शिव सदा जागते रहते हैं, और इसके स्पर्शमात्रसे मुग्ध होकर विष्णु निद्रामें पड़े रहते हैं ।

लक्ष्मी विद्वान् ब्राह्मणोंके पास क्यों नहीं आती इसका कारण किसी कविने निम्नलिखित श्लोकमें अच्छा दिया है :—

पीतोऽगस्त्येन तातश्चरणतलहतो बहूमोऽन्येन रोषा—

दाबाल्याद्विप्रवर्यैः स्ववदनविचरे धारिता वैरिणी मे ।

गेहं मे छेद्यन्ति प्रतिदिवसमुमाकान्तपूजानिमित्तं ॥ ६७ ॥

तस्मात्स्त्रिया सदाहं द्विजकुलसदनं नाथ ! नित्यं त्याजामि ॥ ६७ ॥

६७ भावार्थ :—विष्णुने लक्ष्मीसे पूछा कि तुम ब्राह्मणोंसे क्यों घृणा करती हो ? उनके पास क्यों नहीं जाती ? इस पर लक्ष्मी उत्तर देती है :—“हे नाथ ! अगस्त्य नामी एक ब्राह्मण था जिसने मेरे पिता समुद्रको उठाकर पी लिया । एक दूसरा ब्राह्मण भृगु नामका हुआ है जिसने मेरे पति विष्णु भगवान्को लातसे मारा । बहुत छोटी उमरसे ही ब्राह्मण लोग मेरी वैरिणी सरस्वतीकी उपासना करते हैं और सर्वदा उसे अपने मुखमें धारण करते हैं । बेलपत्रमें मेरा वास रहता है, उसी बेलपत्रको वे लोग प्रति दिन शिवजीकी पूजाके निमित्त तोड़ते हैं । इन्हीं सब बातोंसे खिन्न होकर मैं ब्राह्मणोंके यहां नहीं रहती ।—

लक्ष्मी पानेसे लोग अङ्गुठे अन्धे हो जाते हैं इस बातको कविने फीसे अच्छे ढंगसे नीचे लिखे हुए श्लोकमें कहा है :—

लक्ष्मि ! क्षमस्व वचनोपमिदं दुरक्तः—

मन्धीभवन्ति पुरुपास्त्वदुपासनेन ।

नो चेत्यर्थं कमलपत्रविशालनेत्रो

नारायणः स्वपिति पन्नग भोगतल्पे ॥ ६८ ॥

६८ भावार्थ :—हे लक्ष्मी ! तुम्हारी भक्ति करनेवाले पुरुष

अन्धे हो जाते हैं। यद्यपि इस कथनसे तुम्हारी निन्दा होती है पर है बात सच इससे कहना पड़ता है। इससे ऐसा कहनेके लिये क्षमा चाहता हूँ। यदि तुम्हारी उपासना करनेसे पुरुष अन्धे न होते तो कमलपत्रके समान बड़े बड़े नेत्रवाले विष्णु भगवान् भी, तुम्हारे साथ रहनेसे, क्यों शेषनागके शरीर पर सोते। तुम्हारे साथसे विष्णु भगवान् बड़ी बड़ी आपवाले होकर भी अन्धे हैं, तभी तो शेषनाग पर सो रहे हैं।

आदर्श करुणारस ।

एक मृगीको, किसी व्याधाने फन्देमें फंसा लिया है। उसे सम्बोधन करके मृगी कण्ठाजनक शब्दोंमें कहती है :—

आदाय मासमखिलं स्तनवर्जमंगात्
मा मुंव ! वागुरिक ! याहि कुरु प्रसादम् ।
अद्यापि घासकवलप्रसनानभिज्ञो
मन्मार्गवीक्षणपरस्तनयो मदीयः ॥६६॥

६७ भावार्थ — हे व्याधा ! स्तनोंको छोड़कर मेरे समस्त शरीरसे मास लेकर मुझे छोड़ दे ; इतनी कृपा मुझपर कर ! मेरा छोटा बच्चा अबतक घास खाना नहीं जानता। वह मेरा रास्ता देखता होगा कि मैं आऊँ और वह मेरा दूध पिये। इसलिये मुझे छोड़ दे मैं जाऊँ। कितना करुणापूर्ण और हृदयाकर्षक भाव है।

आदर्श वीररस ।

यह श्लोक वीररसका बहुत अच्छा उदाहरण है । इसके भाव और शब्द दोनों बहुत अच्छे हैं । इस श्लोकमें एक खूबी यह है कि इसके अनुकूल ही शब्दका प्रयोग इसमें 'किया गया है । इसके एक एक पदमें वीर रस टपक रहा है । यह श्लोक जेगन्नाथ पण्डितराजके भामिनी-विलाससे लिया गया है —

धीरध्वनिभिरलते नीरद ! मे मासिको गर्भ ।

उन्मदवारणबुद्धया मध्येजठरं समुच्छलति ॥१००॥

१०० भावार्थ—रेवादल ! मत गरज, मत गरज । इन अपने गभीर शब्दोंको मत कर ! मेरे एक महीनेका गर्भ है । वह यह समझकर कि कोई मतवाला हाथी चिघाड रहा है, मेरे पेटमें इसलिये उछल रहा है कि बाहर निकल कर इसे पछाड़ें ।

आदर्श कृपण ।

किसी अर्थ पिशाच कृपणके जीवनका चित्र इस श्लोकमें अच्छा घोंचा गया है —

जातिर्यातु रसातलं, गुणगणस्तस्याप्यधो गच्छता,—

च्छीलं शैलतटात्पतत्वमिजन सन्दह्यतां वह्निना ।

शौर्यै घैरिणि यज्जमाशु निपतत्वथोरतु न केवलं,

येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्राया समस्ता इमे ॥ १०१ ॥

१०१ भावार्थ —“जाति रसातलको घली जाय ती घली जाय हमें कुछ परवाह नहीं है । जितने गुण हैं वे सब पातालसे भी नीचे घटे जाय फीरे चिन्ता नहीं है । शील और खरित्र पहाड

पर से गिरें और चकना चूर हो जायं, हमें खुशी से मंजूर है। कुटुम्ब का कुटुम्ब आग में जल मरे, अच्छी बात है। धीरता, जो हमारी शत्रु है, उस पर ईश्वर करे वज्रपात हो। हमें तो केवल धन चाहिये, जिसके बिना ये समस्त गुण तिनके के समान हैं।”

आदर्श दरिद्र ।

इस श्लोक में एक दरिद्र कुटुम्ब का चित्र अच्छा खींचा गया है :—

वृद्धोऽन्धः पतिरेपमंचकमतः, स्थणावशेषं गृहं
कालोऽभ्यर्णजलागमः, कुशलिनी वत्सस्य वार्त्तापि नो ।
यत्नात्संचिततैलधिन्दुघटिका भग्नेति पर्याकुला,
दृष्ट्वा गर्माभयलसां निजवधूं भ्रूश्चिरं रोदिति ॥ १०२ ॥

१०२ भावार्थ :—पति वृद्ध, अन्धा, तथा रोगी, खाद से रहा है; घर सब ओर से जीर्ण हो रहा है केवल एक ठूँठ मात्र बच गया है; बर्सात भी अब आरंभ होनेवाली है; लड़का परदेश गया है उसकी भी कोई खबर नहीं मिली; बड़े पत्तसे एक एक बून्द करके घड़े में तेल जमा किया गया था हाथ बह भी टूट गया! लड़केकी वह गर्भवती और हंडिया से पेट निकाले है! यह सब देखके घर की पुरखिन सास बड़े ज़ोरसे रो रही है।

दुर्जन और सज्जन ।

किसी छिद्रान्त्रेपी समालोचक से सताया गया एक कवि कहता है :—

अतिरमणीये काव्येऽपि पिशुनो दूषणमन्वेपयति,
अतिरमणीये वपुषि व्रणमिव मक्षिकानिकरः ॥ १०३ ॥

१०३ भावार्थ :—चाहे काव्य या ग्रन्थ कितना ही उत्तम और निर्दोष क्यों न हो किन्तु खल मनुष्य उसमें केवल दोषही ढूँढ़ेगा । जैसे कि शरीर चाहे कितनाही सुन्दर क्यों न हो किन्तु उसे छोड़ कर मक्खियां सिर्फ घाव या फोड़े पर बैठेंगी, अन्यत्र नहीं ।

इसी भाव का एक दूसरा श्लोक परिडत महावीरप्रसाद द्विवेदी की कृपा से मुझे प्राप्त हुआ है । उसे नीचे लिखते हैं :—

कर्णामृतं काव्यरसं विहाय दोषेषु यत्नः सुमहान् खलस्य,
अयैक्षते कैलिवनं प्रविष्टः प्रमेलकः कण्ठकः जालमेव ॥ १०४ ॥

१०४ भावार्थ :—दुष्ट मनुष्य अमृतके समान मधुर काव्यमें गुण को छोड़ कर केवल दोष ढूँढ़ने का यत्न करता है । जैसे ऊँट किसी सुन्दर उपवन में प्रवेश कर के केवल कंटीले वृक्ष और झाड़ु झंझाड़ु की तलाश करने लगता है ।

कट्ट्यादियों के चाग्याणों से बेधा गया कोई हालाहल विष की संशोधन करके कहता है :—

अहमेव भुजः सुदामणानामिति हालाहल ! तात ! मास्मद्वयः ।
ननु सन्ति भयाद्दशानि भूयो भुवनेऽस्मिन् घचनानि दुर्जनानाम्

१०५ भावार्थ :—हे हालाहल ! मत घमण्ड करो कि हम्हों जितने कटु और पीड़ा देने वाले पदार्थ हैं सर्वोंमें श्रेष्ठ हैं, हमारे मुकाबिले का कोई नहीं है। अरे तुम्हें मालूम नहीं है कि तुम्हारे समान इस जगत् में दुष्ट पुरुषोंके घबचन भी हैं, जिनके लगते ही मनुष्य एक धार प्राण रहते भी निर्जीव हो जाता है। इसी भावसे एक उर्दू शेर भी है :—

छुरी का, तीर का, तलवार का तो घाव भरा ।

लगा जो जख्म जवां का, रहा हमेशा हिरा ॥

खलोंके वाग्वाणोंसे छेदा गया कोई विपको संयोजन करके कहता है :—

नन्वाश्रयस्थितिरियं तव कालकूट !

केनोत्तरोत्तरविशिष्टपदोपविष्टा ।

प्रागर्णवस्य हृदये, वृषलक्ष्मणोऽथ

कण्ठेऽधुना वससि वाचि पुनःखलानाम् ॥ १०६ ॥

१०६ भावार्थ :—हे कालकूट ! एक दूसरेके उपरान्त उत्तम से उत्तम अपना आश्रय स्थान चुननेकी शिक्षा तुमने किससे पाई है। पहले तुम समुद्रके भीतर रहते थे, फिर शिव के कण्ठ में बसने लगे, और आज कल खलोंकी वाणीमें रहते हो।

इस कलिकाल में सज्जन क्यों दुःख पाते हैं इसका कारण देते हुए किसीने अच्छा कहा है :—

“लोको मद्यु गजन्मा, कृतकृतकर्मा, न मद्धर्मा,”

इति हेतोरिव कलिना बलिना संपीड्यन्ते साधुः ॥ १०७ ॥

१०७ भावार्थ :—“साधु पुरुष पैदा तो हुए हैं हमारे काल में

और काम करते हैं सत्ययुग का, मेरे युग के अनुसार बिल्कुल आचरण नहीं करते ।” इसी कारण से गुस्सेमें आकर महा बली कलि साधु सज्जन पुरुषोंको सता रहा है ।

लोग कहा करते हैं कि खलोंका हृदय कैसा कठोर होता है पर यह ठीक नहीं है । खलोंका हृदय नहीं बल्कि सज्जनोंका हृदय कठोर है । इसी पर एक कवि कहता है :—

हृदयानि सतामेव कठिनानीति मे मतिः ।

खलवाग्विशिखैस्तीक्ष्णैर्भिन्न्यते न मनाग्यतः ॥ १०८ ॥

१०८ भावार्थ :—मेरा तो यह विचार है कि सज्जनों ही का हृदय कठोर होता है । यदि ऐसा न होता तो वह खलोंके वाग्वाणोंसे क्यों नहीं छिद जाता । छिदना तो दूर रहा उसमें रेखामात्र भी नहीं लगती ।

फुटकर श्लोक ।

इस श्लोक में एक मसखरे तथा एक बुढ़िया की मज़ाक भरी बातें हैं :—

अधः पश्यसि किं वृद्धे ! पतितं तव किं भुवि ।

रेरे मूढ न जानासि गतं तायण्यमौक्तिकम् ॥ १०९ ॥

१०९ भावार्थ :—हे वृद्धे ! अमर झुकाए हुए तू नीचे क्या देख रही है ? क्या ज़मीन पर कुछ गिर पड़ा है, जिसे दूढ़ रही है ? इस पर बुढ़िया भी चुदल भरा जवाब देती है :—रे मूख, क्या तू नहीं जानता कि मेरा जधानीरूपी मोती गिर पड़ा है

उसी को तलाश कर रही हूँ। इसी भावका एक फ़ारसी का शेर भी है :—

चरा ख़म कदा मी ग़तन्द पीराने जहां सायब ।
मगर दर ख़ाक मी जूयन्द ऐय्यामे जवानीरा ॥

धनहीन मनुष्योंके ऊंचे ऊंचे हौसले बिना धन के किस तरह तरह से पस्त हो जाते हैं इसकी उपमा कविने बहुत अच्छी दी है। उपमा यद्यपि अश्लील है तथापि बहुत ही सार्थक और सानुकूल है :—

उत्थाय हृदि लीयन्ते दरिद्राणां मनोरथाः ।

बालवैधव्यदग्धानां कुलखीणां कुचा इव ॥ ११० ॥

११० भावार्थ :—दरिद्रोंके हौसले हृदयमें उसी तरह उठने हैं और विलीन हो जाते हैं, जिस तरहसे कि उच्चकुल की बाल-विधवाओं के कुच उठते हैं और फिर व्यर्थ होकर विलीन हो जाते हैं।

किसी ने इन्द्रियदमन पर अच्छा कहा है :—

नासी जयी जिता येन नकव्यालमृगाधिपाः ।

जितं तेनैव येनेह दान्तो मारखिल्लोकजित् ॥ १११ ॥

१११ भावार्थ :—असल में वह विजयी नहीं है जिसने घड़ियाल, सर्प, अधमा सिंह पर विजय पा ली है। सच्चा विजयी तो वही है जिसने तीनों लोकोंके विजय करनेवाले कामदेव को अपने काबूमें कर लिया है।

इसी भाव का एक उर्दू का शेर भी है :—

नेहंगो अज्ञदहाओ शेर नर मारा तो क्या मारा ।

• बड़े मूजीको मारा नफ्स अम्मारको गर मारा ॥

किसी कवि ने कामदेव की चोर से उपमा देते हुए, कहा है :—

प्रज्ञा विनाशयत्यादौ प्रविष्टो हृदि मन्मथः ।

दक्षो गेहं समायाति दीपं निर्वाण्य तस्करः ॥ ११२ ॥

११२ भावार्थ :—जब कामदेव हृदयमें प्रवेश करने लगता है तो पहले बुद्धि को हर लेता है । ठीक है चोर जब घर में घुसने लगता है तो पहले दिये को बुझा देता है । इसी भावकी एक फारसीकी शेर भी है :—

इशक चू दरसीना आमद अल्करा अव्यल खूद ।

दुज्दं दाना पर कुनद अव्यल बिरागे गानरा ॥

अपने मन को संबोधन करके कोई कहता है :—

मनः कुत्रोद्योगः सपदि यद् मे शम्यपदवी

नरे वा नार्या वा गमनमुभयत्राप्यनुचितम् ।

यतस्ते ह्रीवत्सर्वं सकृदपि गतो हास्यपदवीं

जनस्तोमे मागास्त्वमनुसर हि ब्रह्मपदवीम् ॥ ११३ ॥

११३ भावार्थ :—मन ! तुम्हारा क्या विचार है ? जरा यत्नाओ तो कहां चले ? किसी पुरुष के पास जाना चाहते हो अथवा स्त्रीके ? दोनों में से एक के प्रति भी जाना तुम्हारे लिये अनुचित है । क्योंकि तुम नपुंसक हो और यहां हमने जाओगे । इसलिए तुम मनुष्योंके पास न जाकर “ब्रह्म” के पास जाओ ।

तुम्हारा उम्भका जोड़ है, तुम भी-नपुंसकलिंग हो और वह भी नपुंसकलिंग है। इसलिये तुम्हारी उसकी पट्र जायगी ।

एक मनुष्य ने किसी वेदान्ती से पूछा कि तुम सन्ध्या क्यों नहीं करते। इस पर वह जवाब देता है :—

मृता मोहमयी माना जातो ज्ञानमयः सुत ।

सूतकं चर्वते नित्यं कथं सन्ध्यामुपास्महे ॥ ११४ ॥

११४ भावार्थ :—मोहरूपी माता मर गई है, और ज्ञानरूपी पुत्र पैदा हुआ है। रोज तो हमें सूतक लगा रहता है, सन्ध्या किस तरहसे करें? अर्थात् जब तक मोहरूपी अन्धकारमें मनुष्य पडा हुआ है, जब तक उसे ज्ञानका प्रकाश नहीं मिलता तभी तक वह सन्ध्या इत्यादि के फेरमें पडा रहता है। ज्ञान की ज्योति मिलनेपर वह सन्ध्या इत्यादि से परे हो जाता है।

जाते (चञ्जी) की घरर घरर आवाज सुन कर एक कवि कहता है :—

रे रे घरट्ट ! मा रोदीः कंकं न भ्रामयन्त्यमूः ।

कटाक्षश्लेषणादेव कराकृष्टस्य का कथा ॥ ११५ ॥

११५ भावार्थ :—हे घरट्ट (जांते) तुम क्यों रो रहे हो। अरे ये स्त्रिया किम् किस को सिर्फ अपने कटाक्ष मात्र से नहीं घुमातीं। और फिर तुम्हें तो अपने हाथोंसे चकर खिला रही हैं। तुम्हारा क्या कहना है।

चलसे ही प्रतिष्ठा होती है, बिना चलके कोई घात भी नहीं पूछता। इसपर एक कविने अच्छा कहा है :—

वासः प्रधानं खलु योग्यतार्याः ।

वासोविहीनं विजहाति लक्ष्मीः ।

पीताम्बरं वीक्ष्य ददौ तनूजां

दिगम्बरं वीक्ष्य विषं समुद्रः ॥ ११६ ॥

११६ भावार्थः—वस्त्रही प्रतिष्ठा—का मूल कारण है, बिना वस्त्रवालेको लक्ष्मी बात भी नहीं पूछती । देखिये समुद्रने विष्णुको पीताम्बर इत्यादि उत्तम वस्त्र धारण किये हुए देखकर अपनी लड़की लक्ष्मी उन्हें दी और महादेवको दिगम्बर (नग्न) देख कर उन्हे केवल विष दिया । इसी भावका एक श्लोक मुझे पण्डित महावीर प्रसादजी द्विवेदीसे प्राप्त हुआ है जिसे मैं नीचे लिखता हूँ—

अक्षराणि परीक्ष्यन्तामम्बराडम्बरेण किम् ।

दिगम्बरो महादेवः सर्वज्ञः किन्न जायते ॥

इस असार संसारमें यदि कुछ सार है तो वह ससुरका घर है । इसको किसीने बड़े अच्छे ढङ्गसे कहा है :—

असारे पल्लु संसारे सारं श्वशुर मन्दिरम् ।

दूरो हिमालये शेते विष्णुः शैते महोदधी ॥११७॥

११७ भावार्थः—इस असार संसारमें सार केवल ससुरार है ।

यदि यह बात न होती तो महादेवजी सय स्थानको छोड़कर अपने ससुरके घर हिमालयमें क्यों घास फरते और विष्णु भगवान और सय स्थानको त्यागकर अपने श्वशुरपुर समुद्रमें

लक्ष्मीजी कमलमें, महादेवजी हिमालयमें, विष्णु भगवान् क्षीर समुद्रमें क्यों सोते हैं—इसपर किसी कविकी अनोखी स्रष्ट है—

कमले कमला शैते, हरः शैते हिमालये ।

हरिः क्षीरोद्घौ शैते, मन्ये मत्सुणशंकया ॥११८॥

भावार्थः—मैं समक्षता हूँ खटमलके डरके मारे लक्ष्मी कमलमें सोती है, महादेवजी हिमालय पर सोते हैं और विष्णु भगवान् क्षीर समुद्रमें शयन करते हैं ।

कविता कैसी होनी चाहिये इसपर किसी कविने बड़ा अच्छा कहा है :—

कृपांसकेनार्थतिरोहिनी कुची

रम्या रमण्या. कविताक्षराणि च ।

अदं निगूढानि सुशोभितान्यलं

नात्यन्तगूढानि न वा स्फुटान्यपि ॥११९॥

११९ भाग्यार्थः.—चोलीसे आधे ढके हुए कामिनीके कुच और कविताके अक्षर तभी शोभा देते हैं जब वे कुछ छिपे और कुछ खुले रहते हैं । विलकुल मुदे अथवा विलकुल खुले कुच और कविताके शब्द शोभा नहीं देते । इसी श्लोकका किसी हिन्दीके कविने अच्छा अनुवाद इस दोहेमें किया है—

कवि आखर अर तिय सुकुच अप्र उघरे सुख देत ।

अधिक ढकेह सुखद नहिं उघरे महा अहेत ॥

जगन्नाथजीकी मूर्ति काठकी क्यों है इसपर किसी कविकी यही अनोखी स्रष्ट है :—

एका भार्या प्रवृत्तिमुपरा, चंचला च द्वितीया,
 पुत्रस्त्येको भुवनविजयी मन्मथो दुर्निवारः ।
 शेषः शय्या, शयनमुदधी, वाहनं पन्नगारिः,
 स्मारं स्मार स्वगृहचरितं दारुभूतो मुरारिः ॥१२०॥

१२० भावार्थः— विष्णुकी एक स्त्री सरस्वती है जो स्वभाव हीसे बड़ी चाचाल है—दिनभर बक बक किया करती है। दूसरी स्त्री लक्ष्मी है जो महा चंचला है—एक जगह स्थिर होकर नहीं रहती। कामदेव नामक एक पुत्र है जो अपने वशमें नहीं है—ससारको विजय करनेमें लगा हुआ है। सोते किसपर है? शोपनाग पर। रहनेका स्थान कहां है? समुद्रमें। वाहन क्या है? सर्पों का शत्रु गरुड़। अपने घरका यह सब चरित्र देख देखके विष्णु भगवान् काठके हो गये। वही जगन्नाथजी हैं।



शुद्धिपत्र.

—२१६—

श्लोक

१३

१६

१८

२१

अशुद्ध

शान्ति

ऋधामहो

त्वदेकमनसः

भूतनिवहाः

आंगन

शुद्ध

शान्तिं -

: ऋधमहो

त्वदेकमनसः

भूतनिवहः

आंगन

अणुदिणमणण-
कम्मा

जाहुन

पीमें हियमें होइ है

वाला

तोयांजलिः

स्मित

गृह

विशतस्तन्व्या

धुतिमयवपुः

अन्यजीवप्रमां हन्त !

रहा है

पेज १२ अन्तिम लाइन

पेज १५ लाइन १० अणु दिणमण रण
कम्मा

पेज १६ लाइन ५

पेज १६ लाइन १८

“जाहुनह”

पी हिय छोड़ है

वाला

तोयांजलि

स्मित

गृह

विगतस्तन्व्या

धतिमयवपुः

अन्यजीवप्रमाहन्त !

रही है

श्लोक ३२

” ४२

” ४३

” ”

” ”

” ४४

” ४५

पेज ३१ लाइन १७

श्लोक ६७	पत्र	यत्र
पेज ४० लाइन ६	शशांक	शश
श्लोक ७३	सितवृष	सितवृष
" ७६	संप्रत्युष्णाशुर्गत	संप्रत्युष्णाशुर्गत
" ७७	तदन्वेषणपरा !	तदन्वेषणपरा-
" ८३	युवतिवक्त्रः ।	युवतिवक्त्र
" ८४	वियोगिनीहृदयमोहित शोक हुताशनम्	वियोगिनीहृदयमाहित शोकहुताशनम्
" ८५	शीतल	शीतलं
" ६२	श्रूयताम्	श्रूयताम्
" १०१	सन्दहता	सन्दह्यता
" १०४	कण्ठक जालमेव	कण्ठकजालमेव
" १०५	सुदारुणानामिति	सुदारुणानामिति
पेज ६२ लाइन २	नफ्स	नफ्स



हिन्दीकी उपयोगी पुस्तकें

सप्तसरोज—हिन्दीके सर्व श्रेष्ठ उपन्यास सेवासदनके लेखक श्रीमान् प्रेमचन्द जीकी रचना । इसमें सात अत्यन्त रोचक और शिक्षाप्रद गल्प हैं । सबके पढ़ने योग्य हैं । भाषा सरल और मधुर है । अनेक भाषाके विद्वानोंने इस पुस्तककी प्रशंसा की है । कवचिंग बहुत ही भावमय सुन्दर सचित्र है । कागज़ छपाई आला दर्जेकी । मूल्य केवल ॥१॥ आना ।

कर्मवीर गान्धीके महत्वपूर्ण लेख और व्याख्यान इनमेंगान्धीजीके २० लेख और व्याख्यान हैं । उनका कोई खास लेख या व्याख्यान छूटने नहीं पाया है । गान्धीजीके सिद्धान्त समझ कर अपने जीवनको उच्च बनानेके लिए यह एक ही पुस्तक है । इसे पढ़कर मन पवित्र हो जाता है और हृदयमें सन्तोष उत्पन्न होता है । सरस्वतीने इस पुस्तककी बहुत तारीफ की थी । कागज़ और छपाई बढ़िया । मूल्य केवल १॥ उपहार देने लायक बढ़िया रेशमी जिल्द १॥॥॥

महात्मा शेखसादी—लेखक श्रीमान् प्रेमचन्दजी ।

जगत्प्रसिद्ध महापुरुष शेखसादीका मनोरंजक और उपदेश प्रद जीवन चरित्र, उनका अनूठा भ्रमण वृत्तान्त, उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ गुलिस्तां और दोस्तांकी उदाहरणों सहित आलोचना । सादीकी ऐसी अच्छी अच्छी कहावतें और नीति कथायें हैं कि पढ़कर सदा स्मरण रखने की इच्छा होती है । दाम ॥१॥

ऐतिहासिक लेख संग्रह—लेखक श्रीयुक्त रामकु गोयनका । इसमें इतिहास सम्यन्धो ६ निबन्ध हैं । इन लेख बहुत सी उपयोगी बातें हैं । सरस्वती माडर्न रिव्यू आदि पत्रिकाओंने बहुत तारीफ की है । निबन्ध प्रेमियोंके काम चीज़ है । पुस्तकमें कई चित्र हैं । दाम १२।

नेत्रोन्मीलन नाटक—हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक मि बन्धुओं की अनूठी रचना । इस नाटकमें पुलिसके हथक और अत्याचारोंका सच्चा वर्णन है । इसमें दिखाया गया कि वकील मुकद्दमे कैसे चलाते, झूठे गवाह कैसे गढ़ते : दिन दहाड़े न्यायकी आंखोंमें कैसे धूल झाँकते हैं और किस प्रकार एक झूठा मुकद्दमा बड़ेसे बड़े न्यायालयको भी धोखा सकता है । इसमें उर्दू, गंजारी तथा अन्य कितनी ही भाषाओं मजेदार नमूने मिलेंगे । मूल्य केवल १२।

परीक्षा गुरु—लेखक लाला श्रीनिवासदास । हिन्दी उपन्यासोंमें बेजोड़ शिक्षाप्रद उपन्यास है । इसे पढ़कर आप संसारमें ठगाता नहीं और दुराचारसे बचा रहता है । ३ पन्ने की मोटी पुस्तक दाम सिर्फ ११।

रणधीर प्रेम-मोहिनी नाटक—हिन्दीमें जो अच्छे स्वतन्त्र नाटक हैं उनमें इसकी गणना की जाती है । इस आपको प्रेम रसकी चाशनी भी चपनेको मिलेगी । मूल्य ११।

मिलनेका पता— हिन्दी पुस्तक एजेन्सी,
१२६, हरिसन रोड, कलकत्ता